'धरती धन न अपना' में स्त्री

(WOMEN IN DHARTI DHAN NA APNA)

एम. फिल. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध–प्रबंध

शोध–निर्देशक

प्रो. नामवर सिंह

सहायक शोध–निर्देशक

प्रो. रामबक्ष

शोधार्थी

संध्या कुमारी

भारतीय भाषा केंद्र

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली – 110067

2013

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
भारतीय भाषा केन्द्र
Centre of Indian Language
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
School of Langauge, Literature & Culture Studies
नई दिल्ली–110067, भारत NEW DELHI-110067, INDIA

Date: 26.7.2013

DECLARATION

I hereby declare that the research work done in this M.Phil Dissertation entitle **"DHARATI DHAN NA APNA" MEIN STREE' (Women in Dharati Dhan Na Apna)** by me is the original research work and it has not been previously submitted for any other degree in this or any other university/ institution.

Sandhya
SANDHYA KUMARI
(Research Scholar)

PROF. NAMWAR SINGH
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU
CIL/SLL&CS/JNU

Rambux
PROF. RAM BUX
(Chairperson)

Rambux
PROF. RAM BUX
(Co-Supervisor)

:AM: JAYENU, Tel.: (91-011) 26741557, 26742676 Extn.: 4217, (D) 26704217; Telefax: (91-011) 26704217; Email: chair_cil@mail.jnu.ac.in

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

समर्पण

अम्माँ–पापा को

जिनकी प्रेरणा से

मैं उच्च शिक्षा की ओर

अग्रसर हो पाई ...

अनुक्रमणिका

भूमिका i-vi

प्रथम अध्याय

जगदीश चन्द्र का जीवन–परिचय 1-24

द्वितीय अध्याय

'धरती धन न अपना' में स्त्री–जीवन 25-55

1. सवर्ण स्त्री
2. दलित स्त्री

तृतीय अध्याय

समकालीन स्त्री–विमर्श और 'धरती धन न अपना' 56-98

1. पश्चिम में नारीवादी आंदोलन:उद्‌भव और विकास
2. भारत में नारीवादी आंदोलन:उद्‌भव और विकास
3. स्त्री–विमर्श और 'धरती धन न अपना'

उपसंहार 99-102

ग्रंथानुक्रमणिका 103-113

भूमिका

1972 में प्रकाशित जगदीश चन्द्र का 'धरती धन न अपना' उपन्यास दयनीय, अभावग्रस्त, अंधविश्वासयुक्त, अशिक्षित, बेरोजगार भूमिहीन दलितों के जीवन की विसंगतियों को अभिव्यक्त करता है। उपन्यास का जन्म ही, मध्यवर्गीय समाज के जीवन की विभिन्न पहलुओं को उजागर करने के लिए हुआ था। धीरे–धीरे इसमें दलित, आदिवासी, स्त्री आदि हाशिए की जिन्दगी बिताने वाले किसानों, श्रमिकों, मजदूरों के जीवन की विसंगतियों को स्थान मिला। इस क्रम में फकीर मोहन सेनापति का 'छमाण आठ गूण्ठ', मिर्जा हादी रुसवा का 'उमरावजान अदा', प्रेमचन्द का 'गोदान', रेणु का 'मैला आँचल', नागार्जुन का 'बलचनमा' आदि महत्वपूर्ण उपन्यास हैं। शोषित–पीड़ित मानवता के जीवन–संघर्ष की अभिव्यक्ति की अगली कड़ी है — 'धरती धन न अपना'।

प्रस्तुत लघु शोध–प्रबंध को तीन अध्याय में बाँटा गया है। पहला अध्याय 'जगदीश चन्द्र का जीवन परिचय' है। इस अध्याय में लेखक के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। उपन्यासकार का लेखकीय जीवन किन घटनाओं, परिस्थितियों, व्यक्तियों व कृतियों से प्रभावित हुआ, इसे जानने की कोशिश की गई है। इस अध्याय में लेखक की अन्य रचनाओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन भी किया गया है।

दलित स्त्रियों के शोषण एवं उसके कारणों की पड़ताल करने की कोशिश दूसरे अध्याय 'धरती धन न अपना में स्त्री जीवन' में की गई है। यह भी देखने का प्रयास किया गया है कि उपन्यास में अभिव्यक्त सवर्ण स्त्रियों का जीवन शोषण मुक्त है या नहीं। सवर्ण और दलित स्त्रियों की उपन्यास में उपस्थिति, उनके शोषण के स्वरूप तथा उसके कारणों की समीक्षा की गई है।

सवर्ण और दलित स्त्रियों के जीवन में क्या समानताएँ एवं असमानताएँ हैं, इस पर भी विचार किया गया है।

तीसरे अध्याय 'समकालीन स्त्री–विमर्श और धरती धन न अपना' में नारीवादी आन्दोलन के उद्‌भव और विकास को पश्चिम और भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखा गया है। नारीवादी आन्दोलन की प्रमुख धाराओं एवं मुद्‌दों को स्पष्ट किया गया है। इसकी कमियों को भी पहचानने की कोशिश की गई है। स्त्री अस्मिता के प्रश्नों पर साहित्य में हुई अभिव्यक्ति पर भी विचार किया गया। साहित्य में चलने वाले 'स्त्री–विमर्श' के प्रमुख मुद्‌दो की उपन्यास में उपस्थिति है या नहीं, यह जानने का प्रयास किया गया है। पूर्ववर्ती और समकालीन उपन्यासकारों की रचनाओं में अभिव्यक्त नारी विषयक दृष्टिकोण की संक्षिप्त प्रस्तुति हुई है। प्रेमचन्द, यशपाल, जैनेन्द्र, नागार्जुन, हजारी प्रसाद द्विवेदी, कृष्णा सोबती, मेहरून्निसा परवेज, मन्नू भंडारी, ममता कालिया, उषा प्रियंवदा आदि ने स्त्री जीवन के विविध पक्षों को लेकर जिस तरह रचनाएँ की थी क्या वैसी सफलता 'धरती धन न अपना' के लेखक को मिली है, इस विन्दु पर भी विचार किया गया है। दलित विमर्श की दृष्टि से भी इस उपन्यास का मूल्यांकन किया गया है। इस प्रयास में अनेक कमियाँ रह गई होंगी। अपनी कमियों और त्रुटियों के लिंए मैं जिम्मेदार हूँ। इसके लिए मैं क्षमा ही माँग सकती हूँ।

शोध के विषय–चयन के पीछे एक लम्बी कहानी तो नहीं पर एक कहानी अवश्य है। स्नातक के बाद जब मैं गृहिणी के रूप में महानदी छात्रावास में रह रही थी, मेरी जान–पहचान पड़ोस में रहने वाली जे.एन.यू. की संस्कृत अध्ययन केन्द्र की छात्रा कोसल से हुई। उनसे 'जूठन' और 'दोहरा अभिशाप' लाकर मैंने पढ़ा। गाँव की होते हुए दलित के जीवन की विसंगतियाँ से इतना परिचय नहीं हो पाया था जितना इन आत्मकथाओं को पढ़कर हुआ। इससे बहुत पहले रजत

रानी 'मीनू' जो हमारे पड़ोस में रहती थी, ने बताया था कि वे दलित साहित्य पर शोध कर रही हैं। तब मुझे दलित साहित्य के संबंध में कुछ भी पता नहीं था। बाद में मैंने 'धरती धन न अपना' पढ़ा। मैं इस रचना से बेहद प्रभावित हुई।

जे.एन.यू. में एम.फिल. में प्रवेश के समय मैंने इस उपन्यास पर ही अपना लघु शोध–प्रबंध तैयार किया। मैं इस उपन्यास को अपने शोध का विषय बनाना चाहती थी। बाद में यह देखकर मैं हताश हुई कि जगदीश चन्द्र के संबंध में बहुत कम लोग ही जानते हैं। यहाँ तक कि हिन्दी के भी कम ही विद्यार्थियों को जगदीश चन्द्र के संबंध में पता है।

गुरूदेव नामवर सिंह को लघु शोध प्रारूप दिखाने और इस उपन्यास पर पहले हुए शोधों के संबंध में बताने के बाद मैंने यह भी कहा कि 'सर यदि यह विषय ठीक नही तो मैं किसी अन्य विषय का चयन कर लूँगी।' गुरूदेव ने कहा कि 'धरती धन न अपना' एक अच्छा उपन्यास है। इस पर शोध कर सकती हो। उनकी सहमति से मुझमें नए उत्साह का संचार हुआ और इसके प्रतिफल के रूप में यह शोध प्रबंध आपके समक्ष प्रस्तुत है। गुरूदेव नामवरजी के मार्गदर्शन में शोध करना मेरे लिए जीवन की महत्वपूर्ण उपलब्धियों में एक है। स्नातक के बाद परिवार और बच्चों में व्यस्त रहने के कारण कभी सोचा भी नहीं था कि दोबारा पढ़ाई शुरू कर पाउँगी और वह भी नामवरजी के मार्गदर्शन में।

प्रो. रामबक्ष का मार्गदर्शन स्नातकोतर से ही मिल रहा है। उनके आत्मीय व स्नेहिल स्वभाव के कारण शोध संबंधी जिज्ञासाओं व समस्याओं पर बेझिझक उनसे प्रश्न कर लेती थी। शोध–निर्देशक के रूप में उन्होंने अपना बहुमूल्य समय हमें दिया है। उनके प्रेरणास्पद व अभिभावकीय मार्गदर्शन के कारण यह शोध कार्य सम्पन्न हो पाया। उन्होंने भाषागत अशुद्धियों को सुधारा।

डॉ. गंगा सहाय मीणा सहित भारतीय भाषा केन्द्र के सभी गुरूजनों को सादर धन्यवाद ज्ञापित करना अपना पुनीत कर्तव्य मानती हूँ। सभी शिक्षकों ने मेरी पारिवारिक जिम्मेदारियों को समझा और मुझे सहयोग प्रदान किया।

विनोद शाहीजी के महत्वपूर्ण सहयोग को याद न करना मेरे लिए कृतघ्नता होगी। उन्होंने मुझे न केवल जगदीश चन्द्र पर प्रकाशित सामग्री की जानकारी दी बल्कि अपनी एक पुस्तक भी डाक से भेज दी। जगदीश चन्द्र के पुत्र परागजी, पुत्री आरतीजी तथा तरसेम गुजरालजी का भी सहयोग मिला। इन लोगों ने टेलिफोन पर बातचीत के दौरान मेरी अनेक जिज्ञासाओं को शांत किया।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के केन्द्रीय पुस्तकालय के कर्मचारी भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने सामग्री संकलन में मेरी यथासंभव मदद की।

एम.ए. और एम.फिल. में साथ पढ़ने वाले विद्यार्थियों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने तरह–तरह से मेरी मदद की। हालाँकि अनूप और परम अब जे.एन.यू. में नहीं हैं तथा बी.एच.यू. और डी.यू. से एम.फिल./ पीएच. डी. कर रहे हैं पर उनकी मदद को भूलना मेरे लिए संभव नहीं। दिवाकर, राजीव, दीप, आरती और स्तुति के बगैर तो यह शोध कार्य पूरा हो ही नहीं सकता था। स्तुति से इन विषयों पर विचार–विमर्श न की होती तो न जाने शोध का क्या रूप होता। उसने प्रूफरीडिंग में मेरी मदद की।

परिवार के सदस्यों में मैं सबसे पहले अपनी दिवंगता सास को श्रद्धा सुमन अर्पित करना चाहती हूँ जो कम पढ़ी–लिखी होकर भी शिक्षा को बहुत महत्व देती थीं। वे चाहती थीं कि मैं भी उनके बेटे की तरह 'विदमान'(विद्वान) बनूँ। जेठजी और जेठानी को धन्यवाद देकर मैं उनके ऋण से मुक्त होना नहीं चाहती। अपने बेटे–बहुओं को उनका हमेशा निर्देश रहता था कि चाचा–चाची की

हर तरह से सेवा करना। अपनी बहुओं रूबी, मेघा, जयन्ती, भाभी कल्याणी, भतीजियाँ कल्पना, कामना और नूतन ने समय–समय पर घर की जिम्मेदारियाँ संभालकर अध्ययन में मेरी सहायता की। डॉ. लाभ, मनोज, रमन, संजय, दीपक, पंकज, विनय, अजय, अनुपम और श्याम के सहयोग को मैं कैसे भूल सकती हूँ ? संजयजी ने शोध प्रबंध के पाण्डुलिपि को धैर्यपूर्वक टंकित किया, रमनजी ने गृहस्थी की जिम्मेदारी संभाली तो अजयजी का भावनात्मक सहयोग मिला। अजयजी को मेरे पसंद–नापसंद का मुझसे अधिक ध्यान रहता है, उनकी हमेशा कोशिश रहती है कि मुझे चिंताओं से मुक्त और खुश रखने की।

अपने पति डॉ. कर्ण के प्रति आभार व्यक्त करने के लिए मुझे उचित शब्द ही नहीं मिल रहे हैं। यदि उनका भावनात्मक सहयोग न मिला होता तो यह शोध कार्य पूरा हो ही नहीं सकता था। परिवार और बच्चों के प्रति जिम्मेदारियों में मेरे द्वारा हुई लापरवाहियों को उन्होंने हमेशा ही नजरअंदाज किया है और उच्च शिक्षा हासिल करने के लिए प्रेरित भी। नई–नई किताबे खरीदने और पढ़ने का चस्का उनके साहचर्य से ही लगा। राजू और सन्नी को मैं कैसे भूल सकती हूँ। उनकी सेवा का न तो कोई मूल्य हैं न ही उनके प्रति आभार व्यक्त करने के लिए कोई शब्द। दोनों भाइयों ने बारी–बारी से घरेलू कार्यों में मेरा हाथ बँटाकर मेरी सहायता की है।

अन्त में, मैं उनका नाम लेना चाहती हूँ जिनका शोध कार्य पूरा कराने में सबसे अधिक योगदान है। वे हैं मेरे प्यारे बच्चे––– अनुराग, आस्था और अभिज्ञान। बारहवीं का विद्यार्थी अनुराग तो मेरी शैक्षणिक जिम्मेदारियों को समझता है पर दोनों छोटे बच्चों ने भी मेरी बहुत मदद की है। लिखते वक्त जिस किसी पुस्तक की आवश्यकता होती है, उनसे माँगने पर तुरत लाकर दे देते हैं। उनकी बदमाशियाँ बढ़ता देख मैं कहती हूँ – 'ठीक है मैं पढ़ाई छोड़ देती हूँ।' मेरे इतना

कहते ही वे शांत हो जाते हैं। परिवा्र के बाकी बच्चे आर्यन, अभिनव, आरूषि, आयुष और अनुष्का का कभी चाय और पानी के पूछने तो कभी खाने के लिए बुलाने आना तथा पाँच साल की भतीजी गीत का अपने दोस्तों से शोर न करने के लिए कहना कम महत्वपूर्ण नहीं है। छोटे अक्षत का गाने सुनकर थिरकना मुझमें नये ऊर्जा का संचार करता।

और सबसे अन्त में, दिवंगता ज्योतिसर मैडम को श्रद्धांजलि देना चाहती हूँ जिनका मेरे प्रति अगाध स्नेह था और जिन्होंने मुझे दोबारा पढ़ाई शुरू करने के लिए प्रोत्साहित किया।

— संध्या कुमारी

प्रथम अध्याय

जगदीश चन्द्र का जीवन–परिचय

प्रथम अध्याय

जगदीश चन्द्र का जीवन–परिचय

जगदीश चन्द्र वैद्य का जन्म पंजाब के होशियारपुर जिले के घोड़ेवाहा गाँव में 23 नवम्बर 1930 को हुआ था। इनके पिता का नाम करमचन्द तथा माता का नाम प्रीतम देवी था। [1] करमचंदजी ने आटे की चक्की लगाकर अपना रोजगार शुरू किया था। जगदीशचन्द्र लगभग पाँच साल के थे जब प्लेग के कारण करमचन्द जी की मृत्यु हो गयी। उस समय जगदीशचन्द्र का छोटा भाई काफी छोटा था।

जगदीश चन्द्र के बचपन का ज्यादा समय ननिहाल रल्हण (रलहन) में बीता। वहीं से उनकी पढ़ाई हुई। इसके दो कारण थे। पहला करमचंद की मृत्यु के पश्चात् उनके दोनों भाइयों भागमल और बाबूराम ने परिवार की जिम्मेदारियाँ उठाई। पर जल्दी ही बाबूराम का भी निधन हो गया। भागमल के लिए तीनों परिवारों को संभालना मुश्किल हो गया। दूसरा, पैतृक गाँव घोड़ेवाहा से दसूहा पैदल जाना बच्चे जगदीश चन्द्र के लिए संभव नहीं था। उनके मामा दसूहा में हकीमी करते थे। वे रल्हण से रोज उन्हें अपने साथ ले जाते थे। [2]

जगदीश चन्द्र कक्षा में हमेशा अव्वल आते थे। पिता की असामयिक मृत्यु व परिवार की साधारण आर्थिक स्थिति के कारण उनके जीवन का आरंभिक समय संघर्षपूर्ण रहा। मामाजी की भी आर्थिक स्थिति साधारण ही थी। परिवार

---

1. जगदीश चन्द्र की पुत्री आरती और पुत्र पराग वैद्य से बातचीत के आधार पर
2. शाही, विनोद – *जगदीश चन्द्र रचनावली,* खण्ड : चार, आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा) 2011, पृ. सं. 426

का भरण–पोषण होता था। पर ऐशो–आराम के साधन उपलब्ध हो सके इतनी संपन्नता नहीं थी। किशोर जगदीश चन्द्र रोज पैदल सात–आठ किलो मीटर की दूरी तय कर स्कूल जाते। मामा को अपने भानजे को पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध न कराने का बहुत दु:ख होता था। विनोद शाही ने जगदीश चन्द्र रचनावली के चौथे खण्ड में लिखा है —

"मामाजी जगदीश चन्द्र की प्रतिभा से वाकिफ थे। स्कूल में लगभग अव्वल आने वाले अपने भानजे को पर्याप्त सुविधाएँ न दे पाने का मलाल उन्हें हमेशा रहता। एक बार उन्होंने जब जगदीश चन्द्र से यह कहा कि अगर करमचंदजी जिन्दा होते तो वे उसे एक साइकिल जरूर खरीद कर देते, तो उनकी आँखें भर आयी थीं। उनके बेटे पराग के मुताबिक वे बाद में भी इस वाकये को याद करके कई बार रो देते थे। और इसलिए वे एक अच्छे पिता हो सके।"[(3)]

होशियारपुर तथा जालंधर से उन्होंने आगे की पढ़ाई की। डी. ए. वी. कॉलेज से स्नातक किया फिर अर्थशास्त्र में स्नातकोतर। अर्थशास्त्र के अध्ययन ने उन्हें दृष्टि प्रदान की। इसके साथ ही मार्क्सवाद के अध्ययन से उन्होंने वर्गीय असमानता तथा शोषण के स्वरूपों एवं कारणों को समझा। उन्होंने खुले मन से स्वीकार किया है कि अगर मैंने मार्क्सवाद का अध्ययन नहीं किया होता तो शायद मैं भी उस शोषण का हिस्सा होता और उसे भगवान की देन मानता –

"कॉलेज में अर्थशास्त्र पढ़ने और मार्क्सवाद के प्रभाव से मुझे

---

3. शाही, विनोद – *जगदीश चन्द्र रचनावली*, खण्ड : चार, पृ. सं. 426–427

हरिजन–समस्या को इसके ठीक परिवेश में देखने और इसका विश्लेषण करने की क्षमता मिल गई थी।" (4)

शिक्षा के कारण ही समाज–निर्मित शोषण के प्रपंचों को समझा जा सकता है। अर्थशास्त्र और मार्क्सवाद के अध्ययन के फलस्वरूप जगदीश चन्द्र वर्णाश्रम धर्म पर आधारित समाज में सबसे निचले पायदान पर स्थित दलितों की दुर्दशा के मूल कारणों को समझ पाए। इससे लेखक ने जाना कि जातिगत श्रेष्ठता के आधार पर सवर्ण समाज को सता व संपति का अधिकार मिला हुआ है जिसे अपने ही समाज में निम्नतर जीवन दशाओं में जीने वाले दलितों के साथ उसने कभी भी बाँटना नहीं चाहा। उन्हें जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रकृति प्रदत संसाधनों से भी वंचित रखा। यही कारण है कि वे दलितों नारकीय जीवन का यह सजीव, मार्मिक व यथार्थ चित्रण 'धरती धन न अपना', 'नरक कुण्ड में वास' तथा 'जमीन अपनी तो थी' में कर पाया। इन उपन्यासों में यथार्थ अंकन के पीछे दलित जीवन से लेखक का आत्मीय संबंध भी है।

लेखक का बाल्यकाल और किशोरावस्था का समय ऐसा था जब भारत की आम जनता साम्राज्यवादी और सामंती शक्तियों के आपसी गठजोड़ और शोषण की दुहरी प्रक्रिया में फँसी हुई थी। इसके बाद ही एक साथ जो दो महत्वपूर्ण घटनाएँ घटीं –पहला, देश की आजादी और दूसरा, देश का विभाजन, उसके प्रभाव को भी बहुत बारीकी से देखने–समझने का अवसर लेखक को मिला होगा। यही कारण है कि तत्कालीन समय और समाज की विभिन्न

4.गुजराल, तरसेम एवं शाही, विनोद– *जगदीश चन्द्र एक रचनात्मक यात्रा*, सतलुज प्रकाशन, पंचकुला (हरियाणा) 2007, पृ. सं. –27

समस्याएँ जगदीश चन्द्र की रचनाओं में मिलती हैं।

देश के विभाजन और उससे उत्पन्न त्रासदी ने जगदीश चन्द्र के अन्तर्मन को बहुत गहरे से प्रभावित किया था और उनके लेखक को लेखनी चलानी पड़ी। 1950 में प्रकाशित 'अपना घर' इनकी पहली कहानी विभाजन पर आधारित थी। यह उर्दू में थी। विभाजन से आम जनता के जीवन में आई समस्याओं व शरणार्थियों के जीवन की विविध समस्याओं का रेखांकन हुआ है। यहाँ की जनता भी पीड़ित थी जिनकी जमीनें शरणार्थियों को दी जा रही थी। बाल्यकाल में अपने पैतृक गाँव और तद्जनित शोषण ने भी इन पर प्रभाव डाला। एक साक्षात्कार में तरसेम गुजराल के यह पूछने पर कि आपके लेखन की निरन्तर प्रेरणा क्या है? जगदीश चन्द्र ने बताया था कि "गाँव का आम आदमी, जिसे व्यापक अर्थों में जनता कहा जाना चाहिए मेरी प्रेरणा रही है।" [5]

लेखक का यह कथन उनकी रचनाओं में बहुत हद तक सफल होता दिखाई देता है। पात्रों के संबंध में इनकी मान्यता थी कि हमारे यहाँ 'महाभारत' से लेकर अब तक पात्रों को स्याह और सफेद दो कोटियों में बाँट दिया जाता है पर वास्तविकता ऐसी नहीं होती। मनुष्य में स्याह भी होता है और सफेद भी। परिस्थितियों के अनुसार उसका स्याह या सफेद रूप प्रकट होता है। मनुष्य अच्छाई और बुराई के मिश्रण से ही बना होता है। नायक के संबंध में उनकी मान्यता थी कि मेरा नायक कोई रिवायती नहीं है जो सारी दुनिया को फतह कर घर लौटता है।

जगदीश चन्द्र की रचनाओं के पात्र हमारे आस–पास के ही लोग

---

5. *जगदीश चन्द्र एक रचनात्मक यात्रा,* पृ. सं. –46

प्रतीत होते हैं। चाहे 'मुट्ठी भर कांकर' के प्रह्लाद, मुखिया या अंगूरी हो या 'कभी न छोड़ें खेत' के जगतसिंह, बचिंतसिंह, नत्थासिंह, ठाकुर और जसवंतकौर। इनका जीवन सफलता –असफलता के घात–प्रतिघात से संचालित होता है। ये सभी पात्र सहज मानवीय गुण–अवगुण से युक्त हैं। दुनीचन्द, छज्जूशाह, फेरुमल, मुंशी बाबूराम के माध्यम से दिखाया गया है कि किस तरह महाजन कर्ज देकर किसानों को अपनी चंगुल में फँसा लेते हैं और ब्याज–दर–ब्याज जोड़कर उनकी सम्पत्ति हासिल कर लेते हैं। दुनीचन्द और रामदयाल के माध्यम से पूँजीवाद और बाजारवाद के गठबंधन तथा उसके बीच पीसती आम जनता की तकलीफों को दर्शाया गया है।

भगत सिंह के मानवतावाद से भी लेखक प्रभावित थे। जनता के प्रति भगत सिंह के प्रेम व लगाव को, व उनके मानवतावाद को वे एक नाटक के माध्यम से उभारना चाहते थे (असमय मृत्यु के कारण वे नाटक लिख नहीं पाए)।[6] उन्हें इस बात का दुःख था कि हम भगत सिंह की शहादत के वास्तविक मर्म को भूल गए हैं। वे मार्क्सवाद से प्रभावित थे। मार्क्सवाद ने उन्हें वर्ग चेतना प्रदान की थी। वे साम्यवादी दल (कम्युनिस्ट पार्टी) के 'कार्ड होल्डर' थे।[7] परन्तु इस दल के अन्तर्विरोधों से भी वे परिचित थे।

हिन्दी उपन्यासकारों में प्रेमचन्द इनके सर्वाधिक प्रिय उपन्यासकार थे। यशपाल, मंटो, अश्क की रचनाएँ भी जगदीश चन्द्रजी ने खूब पढ़ी थी। 'निर्मला' और 'गोदान' ने इन्हें बेहद प्रभावित किया था। विदेशी भाषाओं के उपन्यासों में हेमिंग्वे का 'फॉर हूम द बेल टॉल्स', शोलाखोव के उपन्यास 'धीरे बहे दोन रे' तथा

---

6. *जगदीश चन्द्र एक रचनात्मक यात्रा,* पृ. सं 53
7. *जगदीश चन्द्र रचनावली,* खण्ड : चार, पृ. सं. 428

तुर्गनेव के उपन्यास पसंद थे।

जगदीश चन्द्र कई भाषाओं के जानकार थे। उर्दू, पंजाबी, हिन्दी, अंग्रेजी आदि भाषाओं की उन्हें जानकारी थी। विविध विधाओं में मौलिक व सृजनात्मक लेखन के साथ अनुवाद का भी कार्य किया। लेखकीय अहं से ये कोसों दूर थे। अपने मित्रों, सहयोगियों या प्रकाशकों के सलाह–मशविरे को वे महत्व ही नहीं देते बल्कि उसके अनुसार जहाँ आवश्यक लगता सुधार भी करते।

जगदीश चन्द्रजी को संगीत बेहद पसंद था। लिखते समय आस–पास के वातावरण से अपने को अलग रखने के लिए संगीत सुनते थे। चाहे वह किसी भी प्रकार का हो।

सन् 1956 में जगदीश चन्द्र दिल्ली आकाशवाणी में समाचार सह–संपादक के पद पर नियुक्त हुए। इसके पश्चात् ही इनकी शादी क्षमाजी से हुई। क्षमाजी ने देव कॉलेज अंबाला से स्नातक की उपाधि प्राप्त की थी। 1957 में इनका तबादला श्रीनगर हो गया। 1958 में इनके बड़े बेटे अनुराग का जन्म हुआ। 1962 में जगदीश चन्द्र पुनः दिल्ली आ गए। 1963 में उनके यहाँ जुड़वा संताने हुईं – पराग और आरती। इसी समय कदाचित् कुछ घरेलू परेशानियों की वजह से वे डिप्रेशन के शिकार हो गये। डिप्रेशन के दौरान उन्हें हर वक्त मौत का डर सताता। कभी वे अपने हाथों को उलट–पलट कर देखते तो कभी उन्हें लगता कि पंखा उनके उपर आ गिरेगा। कभी उन्हें अपने दिल के मरीज होने की शंका होती।

जगदीश चन्द्र के शब्दों में ––

"कुछ साल मुझे बहुत परेशानियों का सामना करना पड़ा था। फलस्वरूप मैं नर्वस ब्रेक डाउन का शिकार हो गया। लाइलाज बहम में फंस

गया। हर समय मुझे मौत का डर सताता हालांकि मुझे कोई बीमारी नहीं थी, सिवाय बहम के।"[8]

विनोद शाही को एक साक्षात्कार में उनकी धर्मपत्नी क्षमा वैद्य ने बताया कि इस बीमारी की शुरूआत लालबहादुर शास्त्री जी की मृत्यु के वक्त हुई। विनोद शाही की मान्यता है कि 'ज्यादा समर्थ ज्यादा गहरा व जमीन से आत्मीय रिश्ता बनाने वाला उनका प्रौढ़ लेखन इस डिप्रेशन से उबरने के बाद के दौर का है।' [9] इस तथ्य का विश्लेषण करते हुए डॉ. शाही आगे लिखते हैं —

"जगदीश चन्द्र थे तो एक यथार्थवादी लेखक, परन्तु 'डिप्रेशन' की इस भूमिका को समझने पर हम इस नतीजे पर पहुँच सकते हैं कि इस कठिन दौर में वे अस्तित्व की समस्याओं से जूझ रहे थे, जिससे उन्हें अपने पात्रों के जीवन–मरण, संघर्ष और उनकी स्थिति तथा अंतर्व्यक्तित्व में संस्कार रूप में मौजूद सांस्कृतिक चेतना और उसकी मूल्य संरचनाओं में गहरे उतर सकने में मदद मिली। बेशक इस अस्तित्व संधान व चेतना को जगदीश चन्द्र ने कभी अमूर्त या अन्तर्द्वन्द्व मूलक उलझनों के चित्रण की तरह रचनाशीलता का आघात नहीं बनाया; पर इससे उन्हें अपने पात्रों के साथ हुई अन्यायपूर्ण ज्यादतियों की वजह से, उनके भीतर जन्म लेने वाले 'मनो–नरक' को समझ सकने लायक बना दिया।"[10]

डिप्रेशन के बाद की रचनाओं के प्रौढ़ व परिष्कृत होने का वास्तविक कारण चाहे जो भी हो पर यह तो पूर्णतः स्पष्ट है कि उसके बाद की

---

8. *जगदीश चन्द्र एक रचनात्मक यात्रा,* पृ. सं 29
9. *जगदीश चन्द्र रचनावली,* खण्ड : चार, पृ. सं. 430
10. *वही,,* पृ. सं. 431

रचना 'धरती धन न अपना' लेखक के लेखकीय जीवन का प्रस्थान–बिन्दु है।

'डिप्रेशन' से उबारने के लिए/बाहर निकालने के लिए मित्रों व परीवारीजनों ने काफी प्रयास किए। उन्हें उनके पसंदीदा कार्यों में व्यस्त रखने की कोशिश की। वे 1970 में जालंधर आ गए। कुछ समय पब्लिक इंफर्मेशन ब्यूरो में कार्य करने के पश्चात् वहीं दूरदर्शन में समाचार संपादक का कार्यभार संभाला।

जगदीश चन्द्र के अपने मित्रों से बहुत ही आत्मीय संबंध थे। उनका घर साहित्यिक मंडली की बैठकबाजियों का महत्वपूर्ण स्थान होता था। जगदीश चन्द्र को बैठकबाजी पसंद थी। वे मित्रों के यहाँ बेतकल्लुफ होकर जाते थे। परन्तु उन्हें दूसरों की परेशानियों का भी सदा ख्याल रहता था। घरेलू जिम्मेदारियां निभाने में उनकी रूचि कम थी। जगदीश चन्द्र की पत्नी सारी जिम्मेदारियाँ उठाकर पति को उन चिन्ताओं से मुक्त रखती थी। शायद यही कारण है कि वे नौकरी की व्यस्तता के बाद भी साहित्य सृजन करते रहे।

जगदीश चन्द्र नौकरी को रोजी–रोटी के लिए आवश्यक नहीं मानते थे। उन्होंने नौकरी की व्यस्तताओं को लेखन पर हावी नहीं होने दिया (अर्थात् लेखन प्रक्रिया उससे बाधित नहीं हुई)। वे नौकरी और लेखन को सदा अलग–अलग मानते थे।

जगदीश चन्द्र ने अपनी लेखकीय जीवन की शुरूआत लगभग 1950से की थी। इनकी पहली रचना 'पुराने घर' कहानी है। वैसे तो जगदीश चन्द्र ने कहानी, नाटक, रिपोर्ताज लिखे, पर इनका मन उपन्यासों में अधिक रमा है। अपने लेखन प्रक्रिया के संबंध में इन्होंने बताया है कि – "मैं अपने चुने हुए पात्रों से प्यार करता हूँ और उनके साथ जीवित रहता हूँ। फिर वे मुझे हांट

करते रहते हैं। इसलिए विस्तृत कथा पर काम करना मेरे लिए ज्यादा मुनासिब था।"[11]

यही कारण है कि जगदीश चन्द्र ने अपने बचपन और किशोरावस्था में देखे निम्न वर्ग के लोगों के संघर्षपूर्ण जीवन को अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है। दलितों के शोषण को इतने विस्तृत फलक पर सर्वप्रथम चित्रित करने का श्रेय जगदीश चन्द्र को ही जाता है। 'धरती धन न अपना', 'नरक कुण्ड में वास' तथा 'जमीन अपनी तो थी' उपन्यास–त्रयी लेखक के आगे की सोच को दर्शाते हैं, क्योंकि तब तक दलितों के जीवन को लकर प्रेमचन्द , निराला, नागार्जुन आदि ने तो साहित्य में लिखा था पर दलित लेखन ने एक आन्दोलन का रूप नहीं धारण किया था। इस तरह जातिगत आधार पर स्वानुभूति और सहानुभूति का सवाल उठाकर लेखक के कार्यों को कमतर आंकना उनके साथ ज्यादती ही नहीं बेईमानी भी होगी।

1972 में दूरदर्शन की ओर से जगदीश चन्द्र को भारत–पाक युद्ध के अग्रिम मोर्चो पर जाकर कवरेज करने के लिए कहा गया था। 'आधा पुल', टुण्डा लाट', 'लाट की वापसी' उपन्यास की पृष्ठभूमि इन्हीं अनुभवों में निर्मित हुई थी। 'नरक कुण्ड में वास' लिखते समय लेखक चमड़ा कमाने वाली फैक्ट्रियों का चक्कर काटते थे तो 'जमीन अपनी तो थी' लिखते समय मोची के काम का निरीक्षण किया करते थे। परन्तु इनकी रचनायें अश्रु विगलित नहीं करती बल्कि हमें बेचैन करती हैं। सामाजिक व्यवस्था और उसकी अनुदारवादिता पर सोचने के लिए हमें झकझोरती हैं।

लेखक को 'गुरू गोविन्द सिंह हिन्दी पुरस्कार' 1972 में तथा

---

11. *जगदीश चन्द्र एक रचनात्मक यात्रा,* पृ. सं 47

पंजाब सरकार का 'शिरोमणि साहित्यकार' (हिन्दी) 1981 में मिला था। इसके अलावा कुछ और सरकारी व गैर सरकारी पुरस्कार भी इन्हें मिले हैं। जगदीश चन्द्र की मृत्यु 10 अप्रैल 1996 में जालंधर में हुई।

जगदीश चन्द्र की रचनाएँ –

1. यादों के पहाड़ (उपन्यास) – 1966
2. घरती धन न अपना (उपन्यास) – 1972
3. आधा पुल (उपन्यास) – 1972
4. कभी न छोड़ें खेत (उपन्यास) – 1976
5. टुण्डा लाट (उपन्यास) – 1978
6. पहली रपट (कहानी संग्रह) –1981
7. मुठ्ठी भर कांकर (उपन्यास) – 1982
8. घास गोदाम (उपन्यास) – 1985
9. नरक कुण्ड में वास (उपन्यास) – 1994
10. ऑपरेशन ब्लू स्टार (रिपोतार्ज) – 1996
11. लाट की वापसी (उपन्यास) – 2000
12. जमीन अपनी तो थी (उपन्यास) – 2001
13. नेता का जन्म (नाटक) – अप्रकाशित
14. शताब्दियों का दर्द (उपन्यास) – अधूरा

जगदीश चन्द्र की सभी रचनाएँ उनके मरणोपरान्त विनोद शाही के संपादकत्व में आधार प्रकाशन से रचनावली के रूप में चार खण्डों में प्रकाशित हुई है। संपादक ने कृतियों को कालक्रम के आधार पर न बाँटकर प्रवृत्तियों के

आधार पर बाँटा है। संपादक की मान्यता है कि जगदीश चन्द्र के उपन्यास एक ही कथा के भीतर से जन्म लेने वाली दूसरी कथाओं की तरह अंतर्विकास करते रहे हैं, जैसे एक पेड़ की तीन–चार बड़ी शाखाएँ हों, जो अंतर्विभाजित हो गई हैं।[12]

खण्ड एक में दलित कथाओं का उपन्यास त्रयी है, दो में देश विभाजन के पश्चात् शरणार्थियों के आने से यहाँ के लोगों के जीवन में होने वाली उथल–पुथल, गाँवों के कस्बों और शहरों में बदलने की प्रक्रिया से संबंधित उपन्यास हैं। भारत पाकिस्तान युद्ध के अग्रिम मोर्चे पर कवरेज के लिए तैनात होने के कारण सैनिकों की जिन्दगियों के अनुभवों को खण्ड तीन में रखा गया है तो खण्ड चार में उनकी फुटकल रचनाओं को संग्रहित किया गया है।

जगदीश चन्द्र की प्रमुख रचनाओं का आलोचनात्मक विश्लेषण –

कहानी –

आजादी जहाँ सदियों की गुलाबी से मुक्ति दिलाती है, वहीं विभाजन की त्रासदी भी साथ लेकर आती है। वर्षों से साथ रह रहे लोग एक दूसरे के खून के प्यासे हो जाते हैं। उन्हें अपने पुरखों की संपत्ति, घर–द्वार सबकुछ छोड़कर भागना पड़ता है। राजनीतिक निर्णय से देश तो बँट जाता है पर लोगों के लिए इतना आसान नहीं है अपने जमीन–जायदाद को छोड़कर कहीं और चले जाना। **'पहली रपट'** कहानी–संग्रह की पहली कहानी **'पुराने घर'** इसी समस्या को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। फजलू अपने परिवार के साथ कैंप में जाने के लिए जब 'सिर पर छोटी–सी गठरी उठाये हुए घर से निकला

---

12. *जगदीश चन्द्र रचनावली* के फ्लैप के आधार पर

तो उसके कदम रूक–से गये जैसे तीस साल की मेहनत उसे पीछे खींच रही थी।'[13] घर न केवल ईंट–पत्थरों से बना होता है बल्कि उसमें परिवार के सभी सदस्यों की मेहनत, खून–पसीने की कमाई लगी होती है। सपनों से सजे अपने घर को छोड़कर फजलू के परिवार को पाकिस्तान जाना पड़ता है। उधर पाकिस्तान में अपनी तीन बड़ी हवेलियों को छोड़कर जो सरदार आता है उसे फजलू का घर रहने के लिए मिलता है। जमीन की पक्की 'एलॉटमेंट' होने पर सरदार और उसका बेटा घर की छत तोड़ते हैं जिससे शहतीरें और कड़ियाँ बेचकर कुछ रकम बना सकें। इससे कई बातें सामने आती हैं। एक तो यह कि घर से भावनात्मक रिश्ता उसी का होता है जो उसे बनवाता है। दूसरी, शरणार्थियों की माली हालत इतनी खराब है कि वे कुछ पैसों के लिए घर को तोड़ने के लिए विवश हैं। राजनीतिक कारणों से वे अपने पुराने घर व गाँव को छोड़ देते हैं। पर उससे उनका अटूट रिश्ता जुड़ा हुआ है। यही कारण है कि फजलू अपने घर को टूटता हुआ नहीं देख पाता तथा सरदार को भी अपनी हवेली के छत चूने से खराब होने की चिन्ता सता रही है, जबकि वे दोनों इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि वे अपने पुराने घर में दोबारा कभी भी नहीं रह पायेंगे।

कहानी में भावनाओं, दृश्यों या घटनाओं की अभिव्यक्ति सहज रूप में हुई है। इसके लिए सांकेतिकता का सहारा नहीं लिया गया है।

दूसरी कहानी **'चक्कर'** मैं शैली में लिखी गई है। कथावाचक बताता है कि किस तरह उसका सामना एक धूर्त व्यक्ति से होता है जो विज्ञान, राजनीति, साहित्य, संगीत आदि विविध विषयों पर वार्तालाप करता हुआ नजर

---

13. *जगदीश चन्द्र रचनावली,* खण्ड : चार, पृ. सं. 120

आता है। उस व्यक्ति से कथावाचक बहुत अधिक प्रभावित होता है और उसे महाज्ञानी समझ हीन भावना से ग्रसित हो जाता है। परन्तु वह व्यक्ति अपनी बड़ी–बड़ी बातों से उसे चक्कर में डाल देता है। कथावाचक से ली हुई किताबें पास की दुकान पर आधी कीमत में बेचकर भाग जाता है।

'सब एकाउन्टेंट' बाबा साहब दफ्तर में सबसे अधिक कार्य करते हैं। मैनेजर की डाँट–डपट पर उन्हें क्रोध आता है पर उसे पी जाते हैं – इस लालच से कि मैनेजर के वार्षिक रिपोर्ट पर ही उन्हें एकाउन्टेंट की कुर्षी मिलेगी। प्रायः सभी दफ्तरों में मनमानी और मातहत कर्मचारियों का शोषण होता है। **'नीति का निर्णय'** कहानी प्रेस और मीडिया में व्याप्त भ्रष्टाचार को रेखांकित करती है कि किस प्रकार प्रेस और मीडिया सच को झूठ और झूठ को सच बना देती हैं। प्रेस और मीडिया का कर्तव्य है सच्चाई को जनता के समक्ष रखना परन्तु इसके विपरीत वह जनता को गलत खबर देकर गुमराह करती हैं। 'मनोहर मिल्ज' का मालिक सेठ धर्मदास नौकरानी से बलात्कार करने की कोशिश करता है। आत्मरक्षा के लिए वह सेठ पर प्रहार करती है। सेठ के घर, नर्सिंग होम व नौकरानी के घर जाकर दीनदयाल सच्चाई का पता लगाता है। सेठ के गुंडे बस्ती वालों को धमकियाँ भी देते हैं। दीनदयाल बस्ती वालों को सच्चाई उजागर करने का आश्वासन देता है। वह सबकी कलई खोलते हुए समाचार तैयार करता है। संपादक पुलिस की करतूतों को हटा देता है। नर्सिंग होम से बड़ा विज्ञापन आता है इसलिए विज्ञापन मैनेजर डॉक्टर के विरूद्ध बातें हटा देता है। 'मनोहर मिल्ज' से विज्ञापन का आश्वासन पाकर प्रोपराइटर दोबारा समाचार लिखने के लिए कहता है कि लिखो कि हरिजन सेवक सेठ धर्मदास पर नीच नौकरानी ने हमला किया।

घर–परिवार में स्त्री की स्थिति को अभिव्यक्त करती है **'गूंगी'**

कहानी। इसमें बिन माँ की लड़की नूरी की नियति की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई हैं। नूरी का सबसे अवगुण है – उसका मेहनती होना। वह पूरे घर को संभालने के साथ–साथ जानवरों की देखभाल करती है, उनके लिए चारा लाती है। घर का कोई सदस्य किसी कार्य में हाथ नहीं बँटाता। इसी कारण उसका स्वार्थी पिता उसके छोटे भाई–बहन की शादी कर देता है परन्तु नूरी की शादी की बात भी नहीं सोचता। नूरी की मौसी अपने विकलांग बेटे से उसकी शादी करवाने की कोशिश करती है जिससे बहू के रूप में मुफ्त की नौकरानी मिल जाये। असफल होने पर नूरी के चरित्र में अनेक खामियाँ निकाल देती है। शक की आग में जलता हुआ उसका बेरहम पिता इंसान तो क्या पशुओं से भी नूरी के आत्मीय संबंध देख बौखला जाता है और उसकी बेरहमी से पिटाई करता है। नूरी पिता की ज्यादती मूक बनकर सहती है। उसके चुप रहने के कारण ही उसका नाम गूंगी पर जाता है। भाई–बहन किसी को भी उसके जीवन की चिन्ता नहीं। यातना सहते–सहते भय के कारण वह मानसिक संतुलन खोने की स्थिति में पहुँच जाती है।

'पहली रपट' कहानी महत्वपूर्ण कहानी है। इसी के आधार पर संग्रह का नामकरण हुआ है। इसमें पुलिस विभाग की बुराइयों को उभारा गया है। कुख्यात डाकू हरनाम सिंह को मारने का दावा सबसे पहले हवलदार प्रीतम सिंह करता है। उसके पश्चात् सभी पुलिस अधिकारी एक–एक कर अपने उच्च अधिकारी को बताते हैं कि उन्होंने हरनाम सिंह को मारा है। पर पोस्टमार्टम की रिपोर्ट से पता चलता है कि उसकी मौत गोली लगने के छः सात घंटे पहले साँप के काटने से हुई है। यह कहानी बताती है कि किस तरह इनाम के पैसे और पदोन्नति की लालच में पुलिस विभाग का प्रत्येक अफसर अपने मातहत अफसर के कार्य का श्रेय स्वयं लेना चाहता है।

'अलग–अलग नम्बर' कहानी जगदीश चन्द्र के प्रथम उपन्यास 'यादों के पहाड़' का एक हिस्सा है। दिनेश को शादीसुदा दोस्त महेन्द्र से मिलकर अहसास होता है कि यह वह महेन्द्र नहीं जिसे बचपन से किशोरावस्था तक वह जानता था। उसके घर जाकर व अनीता से मिलकर उसे महेन्द्र के बेरंग और बोझिल वैवाहिक व पारीवारिक जिन्दगी का अहसास होता है।

प्रायः सुन्दर लड़कियों को लेकर ही साहित्य सृजन की परम्परा रही है। इसके विपरीत **'आधा टिकट'** विकलांग (बौनी) लड़की बीरो की मर्म–स्पर्शी कहानी है। बीरो कौशल्या नामक स्त्री की हम उम्र है। कौशल्या की शादी के बाद उसकी बहनें कमला, संतोष और फिर लीला की सहेली बनती है। शादी के बाद सब–की–सब उसे नजरअंदाज कर देती हैं। उसे छोटे बच्चे की तरह दुत्कार देती है। उनकी अपनी दुनिया में बीरो कोई अहमियत नहीं रखती। निराश बीरो कौशल्या की बेटी ओमी को अपनी सहेली बनाती है।

कहानियों के लिए जगदीश चन्द्र ने कोई एक क्षेत्र नहीं चुना है, जिस किसी क्षेत्र में उन्हें समस्याएँ नजर आई हैं, उसे अपनी कहानी का विषय वस्तु बनाया है। चाहे, मीडिया का बाजारीकरण हो या पुलिस का भ्रष्टाचार। व्यापारियों के कांइयेपन को **'शाहजी'** माध्यम से उभारा है तो **'पुच्चू'** के माध्यम से बच्चे के प्रति माँ ही नहीं अपितु पूरे गाँव वालों का सहज स्नेह। **'तुफान के बाद'** कहानी हमें बताती है कि भागदौड़ और स्वार्थ की दुनिया में मानवीयता पूरी तरह लुप्त नहीं हुई है। संग्रह में कुल पन्द्रह कहानियाँ हैं।

उपन्यास –

जगदीश चन्द्र का पहला उपन्यास **'यादों के पहाड़'** हिन्दी पाठकों को उतना प्रभावित नहीं कर पाया। परन्तु यह एक अच्छी रचना है। 'शुरू से

अन्त तक मुख्य पात्र दिनेश के अन्मनस्क चित के सहारे तनाव बनाए रखने में लेखक सफल होता।'[14]

प्रकृति का विस्तृत व प्रभावपूर्ण वर्णन है। लेखक ने इसमें निम्न मध्यवर्गीय जीवन में स्त्री–पुरुष संबंधों को उभारा है। अपने दोस्तों से मिल कर दिनेश को महसूस होता है कि उन सब को अपने बोझिल वैवाहिक जीवन का अहसास है पर उस बोझ को उतार फेंकने का साहस नहीं। जिस प्रकार सख्त चढ़ाई पर बोझ उठाने वाले मजदूर पाँव फिसल जाने पर कभी मौसम को गाली देते हैं तो कभी प्रकृति को, परन्तु पीठ पर लदे बोझ को दोनों हाथों से थामे रहते हैं वैसे ही इस उपन्यास के पात्र अपने जीवन की परेशानियों का मूल कारण जानते हुए भी जानना नहीं चाहते।

उपन्यास में कल्पना की प्रधानता है। 'भाषा आवेग बोझिल है और नायक के उन्मतता को उकेरने में समर्थ है। संवादों में कहीं–कहीं भावुकता का आरोपण है।'[15] यद्यपि यह एक पुष्ट रचना है पर इसके उद्‌येश्य व उपलब्धि के संबंध में सोचें तो कुछ स्पष्ट नहीं हो पाता है कि इस उपन्यास के माध्यम से लेखक क्या कहना चाहता है।

'धरती धन न अपना', 'नरक कुण्ड में वास' और **'जमीन अपनी तो थी'** इन तीनों उपन्यास दलित जीवन से जुड़ी विविध समस्याओं को हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं। इन्हें दलित जीवन का प्रमाणिक दस्तावेज माना जा सकता है। 'धरती धन न अपना' में काली पहली बार गाँव छोड़ता है गरीबी और फटेहाली

---

14. चमनलाल– *जगदीश चन्द्र दलित जीवन के उपन्यासकार,* आधार प्रकाशन, पंचकुला (हरियाणा) 2010, पृ. सं. –75
15 *वही,* पृ. सं. –75

से मुक्ति के लिए तो दूसरी बार सामाजिक–सांस्कृतिक रूढ़ियों से उत्पन्न शोषण से मुक्ति पाने के लिए वह गाँव से पलायन कर शहर जाता है। वहाँ जीविका की तलाश में जगह–जगह भटकता हैं क्योंकि बिना जान–पहचान के कोई काम नहीं देना चाहता। कुछ दिनों तक रेढ़ा खींचने के बाद चमड़े के कारखाने में काम करने लगता है। वह कारखाने के दुर्गन्धयुक्त वातावरण में सड़ी –गली, ताजा खालों को नमक से धोने का दुष्कर कार्य करने लगता है। वहाँ के मजदूर ऐसे गंदे पानी में नहाते हैं जिसमें पशु भी नहाना पसन्द न करे। वहाँ का वातावरण नरक से भी बदतर है। काली, किशनु, बंशे, भीमा, माखा आदि के माध्यम से लेखक ने सर्वहारा वर्ग के नियति को उजागर किया है कि भले ही स्वतंत्रता मिल गई है, हम उन्नति की ओर अग्रसर हैं पर आज भी मजदूर शहरों – महानगरों में नारकीय जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं। नाथी कहता है — "कहते हैं कि देश आजाद हो गया है। लेकिन लगता है कि आजादी सेठों, अफसरों और बड़े–बड़े चौधरियों की कोठियों और हवेलियों में ही फँसकर रह गई है। उसे छोटी–छोटी गलियों और कच्चे मकानों का रास्ता नहीं मिला ... साले कितना बड़ा धोखा है।" (16)

स्वतंत्रता के पश्चात् दलितों के उत्थान के लिए जो भी प्रयास किए गए उनकी वास्तविकता को **'जमीन अपनी तो थी'** उपन्यास उजागर करता है। इस उपन्यास में शहर और गाँव की कथा जुड़ी हुई है। उपन्यासकार ने इसमें भूपतियों और सरकारी अधिकारियों की मिलीभगत की बखिया उधेड़ा है। साथ ही दलित नेताओं –अफसरों के निजी स्वार्थों को भी स्पष्ट किया है।

इस उपन्यास–त्रयी में स्वतंत्रता से पूर्व व पश्चात् की सामाजिक,

---

16 चन्द्र, जगदीश–नरक कुण्ड में वास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2, 1994 पृ. सं. 155

आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक स्थितियाँ स्पष्ट हुई हैं। साथ ही यह भी स्पष्ट हुआ है कि दलित गरीबों का शोषण खत्म नहीं हुआ है बल्कि शोषण के तरीके बदले हैं, शोषक बदले हैं। इस उपन्यास–त्रयी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि चरित्र नायक काली अपने जीवन में बार–बार दमित और शोषित होता है पर उसे अपनी नियति या भगवान की देन मानकर स्वीकार नहीं करता बल्कि उसका प्रतिरोध करता है।

'जर, जोरू और जमीन को लेकर लड़ाइयों की परम्परा भारतीय समाज में प्राचीन काल से चली आ रही है। प्रो. निर्मला जैन लिखती हैं –– "हर ऐतिहासिक संकट के क्षण में जिसकी रक्षा का सवाल सबसे विकराल रूप में सामने आता हैं, उनमें दो ही प्रमुख हैं – सम्पत्ति और स्त्री।" (17)

इसके लिए निर्मला जैन ने शब्द दिया है, 'स्त्री पर पूर्ण स्वामित्व का सामन्ती ठाठ'। जगदीश चन्द्र का उपन्यास **'कभी न छोड़ें खेत'** स्त्री पर स्वामित्व के सामन्ती मानसिकता पर आधारित है। उपन्यास के आरम्भ में ही मिल्खा सिंह कहता है – "जन (स्त्री) और जमीन जाट कौम की सबसे बड़ी दौलत है। एक उसके लिए आदमी जनती है और दूसरी अनाज। इन दोनों के पीछे वे जान देते हैं। (18)

नम्बरदारों के करतार को नीलेवालिए चन्द उपलों के टूट जाने या सीतल कौर के गिर जाने के लिए नहीं मारते, नम्बरदारों से उनकी लड़ाई बहुत पुरानी है। उसका मूल कारण है नीलेवालिए की विधवा जसवंतकौर का

---

17 जैन, निर्मला –*कथा–समय में तीन हमसफर*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2011, पृ. सं. 106

18 *जगदीश चन्द्र रचनावली*, खण्ड : दो पृ. सं. 31

नम्बरदारों के जगतसिंह के घर बैठ जाना। ऊधे और जगतसिंह दोनों के पिता में गहरी दोस्ती थी। ऊधे के मरने के बाद उसकी विधवा जसवंतकौर के जगतसिंह से 'करेवा' करने के बाद दोनों परिवारों में दुश्मनी हो जाती है। जगतसिंह और जसवंतकौर का बेटा करतार की हत्या नीलेवालिए कर देते हैं। दोनों परिवार मुकदमेबाजी में बरबाद हो जाते हैं। गाँववालों के लहलहाते खेतों के बीच उनके खेत आसानी से पहचाने जा सकते हैं। दोनों के खेत बिक जाते हैं। दोनों परिवार महाजनों के कर्जदार बन जाते हैं।

इस उपन्यास में लेखक ने दिखाया है कि आर्थिक हानि उठाने पर भी उनका अहं नहीं मिटता। उनमें अफसोस या पछतावे का कोई भाव नहीं है। जगत सिंह के यहाँ पुत्र जन्म की बात सुनकर ठाकुर कहता है – "तीन भाइयों की जवानी बरबाद हो गई, लेकिन परनाला यूं का तूं रहा।" (19) ठाकुर भविष्य के संबंध में सोचकर मुस्कराते हुए कहता है – "होना ही चाहिए था। अच्छा ही हुआ। अब अपने वारिसों के लिए हम कुछ तो छोड़कर मरेंगे।" (20)

इसमें पुलिस विभाग की मनमानी, अमानवीयता, घूसखोरी को दर्शाया गया है। साथ ही अस्पतालों में डॉक्टर और नर्स की लापरवाही, वहाँ व्याप्त भ्रष्टाचार का भी पर्दाफाश हुआ है। धर्म के नाम पर लुटने वाले शाम सिंह जैसे धर्म के ठेकेदारों की भी कलई खोली गई है। इस उपन्यास पर 'जमीन' नाम से धारावाहिक भी बना था। इसमें ड्यूटी पर नर्स को सोते हुए दिखाया गया है। जिसके विरोध में दिल्ली के नर्सों ने हड़ताल कर दिया था। (21)

---

19 *जगदीश चन्द्र रचनावली,* खण्ड : दो पृ. सं. 203

20 *वही,* पृ. सं. वही

21 *जगदीश चन्द्र एक रचनात्मक यात्रा,* पृ. सं. 53

'मुट्ठी भर कांकड़' तथा **'घास गोदाम'** में पाकिस्तान से आये शरणार्थियों के पुनर्वास तथा विकास के नाम पर दिल्ली के आस–पास के गाँवों की जमीनों पर सरकार कब्जा कर लेती है, उन्हें मुआवजा मिलता है परन्तु मूर्ख, अनपढ़, उज्जड़ किसान उस पैसे को ऐशो–आराम में लगा बर्बाद हो जाते हैं। मुखिया, बंसी जैसे चंद होशियार लोग तो दूसरा व्यवसाय शुरू कर देते हैं परन्तु अधिकांश किसान प्रहलाद की तरह जुए और शराब में पैसे उड़ा झुग्गी में मजदूरों की जिन्दगी बिताने पर मजबूर हो जाते हैं। दुनीचन्द तथा रामदयाल जैसे व्यापारी उनका आर्थिक शोषण करते हैं और दिन–दूनी तरक्की करते हैं। इस उपन्यास में यह भी दिखाया गया है कि रणजीत और उतम प्रकाश जैसे बिचौलियों एवं नव बुर्जुआ वर्ग को वास्तविक मुनाफा होता है। प्रश्न उठता है कि विस्थापितों के पुनर्वास या विकास के नाम किसी गाँव के बसिन्दों को विस्थापित करना कहाँ तक उचित है। जिन किसानों को खेती के अलावा कुछ आता नहीं, उनकी जमीने ले मात्र मुआवजा दे–देना कहाँ तक न्याय संगत है? उनके रोजगार का प्रबंध करना क्या सरकार का कर्तव्य नहीं? ऐसा क्यों नहीं हुआ कि जिनकी जमीनों पर कब्जा किया गया उस परिवार के किसी एक भी सदस्य को नौकरी दिया जाय? यदि ऐसा होता तो प्रहलाद को जेल की हवा न खानी पड़ती और उसकी पत्नी गर्भवती अंगूरी के लिए एक छोटे बच्चे के साथ बेघर हो झुग्गी में मजदूरन की जिन्दगी बिताना ही अंतिम विकल्प नहीं रहता। प्रहलाद और अंगूरी उजड़े–बरबाद हुए किसानों के प्रतिनिधि बनकर सामने आते हैं। हमारी विकास पद्धति पर ये दोनों उपन्यास व्यंग्य करते हैं। अनावश्यक वर्णनों के माध्यम से उपन्यास (घास गोदाम) का विस्तार न होता तो रचना अधिक चुस्त होती।

1971 में भारत भारत–पाक युद्ध के अग्रिम मोर्चे पर कवरेज के लिए दूरदर्शन की ओर से जगदीश चन्द्र की नियुक्ति हुई थी। इस दौरान युद्ध

में सैनिकों के साथ रहने से मिले अनुभवों को लेखक ने **'आधा पुल'**, **'टुण्डा लाट'** तथा **'लाट की वापसी'** में समेटा है। भारत–पाकिस्तान के बीच पड़ने वाले पुल को नष्ट करने के क्रम में कैप्टन इलावत मारा जाता है। इलावत के बलिदान और सेमी के प्रति उसके प्रेम से उपन्यास मार्मिक बन गया है। युद्ध से समस्यायें खत्म नहीं हो जाती। राजनीतिक फैसले लेते समय सरहद पर कुर्बान होने वाले सैनिकों को भूला दिया जाता है। युद्ध में अपनी दाई बाँह खो देने वाला टुण्डा लाट की निराशा–हताशा और उससे उबरने के प्रयासों को 'टुण्डा लाट' तथा 'लाट की वापसी' में दर्शाया गया है। कैप्टन सुनील कपूर की अदम्य जिजीविषा हमें प्रभावित करती है। सैनिकों के सैन्य जीवन और निजी जीवन के विविध पहलुओं को लेखक ने कलात्मक अभिव्यक्ति दी है।

'शताब्दियों का दर्द' जगदीश चन्द्र का अधूरा उपन्यास है। **'ऑपरेशन ब्लू स्टार'** के बाद वे पंजाब में फैले आतंकवाद की जड़ों की तलाश करना चाहते थे। संत भिंडरांवाले के जत्थे में शामिल नौजवानों में अधिकांश ऐसे थे जिन्हें बेरोजगारी के कारण अपना भविष्य दिखाई नहीं दे रहा था। लेखक ने पंजाब की दो शताब्दियों को लेकर यह उपन्यास लिखना शुरू किया था। परन्तु मात्र बासठ पेज ही लिख पाये। विनोद शाही की मान्यता है कि 'अधूरी रचना पर राय कायम करना जरा मुश्किल काम है। संभवतः यह 'धरती धन न अपना' से भी बेहतर कृति हो सकती थी।' (22)

रिपोर्ताज –

हरिमंदिर परिसर में संत जरनैल सिंह भिन्डरांवाले के अनुयायी आतंकवादियों और

---

22 जगदीश चन्द्र दलित जीवन के उपन्यासकार, पृ. सं. 147

TH23059

सुरक्षा बलों के बीच 5 से 7 जून 1984 को होनेवाली गोलीबारी को रिपोतार्ज के रूप में लेखक ने 'ऑपरेशन ब्लू स्टार' में प्रस्तुत किया है। लेखक के शब्दों —"इन तीन दिनों के सन्नाटे, तनाव, दहशत, उब, सनसनाती गोलियों, दिल दहला देने वाले धमाकों और हरिमंदिर परिसर में रक्तरंजित सफर के साथ–साथ लोगों की विकृत मानसिकता, भावुकता और मानवीय रिश्तों के बिखंडन (अस्थायी) की आँखों–देखी और कानों–सुनी निष्पक्ष रपट है।" [23]

5 जून को लेखक अपनी टीम के साथ अमृतसर पहुँचता है। वहाँ पी. डब्ल्यू. डी. के रेस्टहाउस में रहते हुए स्वर्ण मंदिर में होनेवाली गोलीबारी को सुना और आतंक को महसूस किया, उसे पूरे ब्योरे के साथ लिखा है। उधर होने वाली कार्यवाइयों से एक सिक्ख जवान विचलित हो जाता है और उसे संयमित करने के लिए नायब सूबेदार (जो कि स्वयं भी सिक्ख है) सभी जवानों के हथियारों को एक कमरे में बंद कर देता है ताकि वे असंयमित होकर आपस में युद्ध न कर पायें। इसे पढ़ते हुए 'तमस' का वह प्रसंग बरबस ही ध्यानाकृष्ट कर लेता है। शहनवाज दंगे के समय रघुनाथ को सपरिवार आश्रय देता है और उसके यहाँ आभूषण लेने जाता है परन्तु साम्प्रदायिकता उस पर इस तरह हावी हो जाती है कि रघुनाथ के नौकर मिलखी को ठोकर मारकर गिरा देता है। [24]

संत भिंडरांवाले की लाश देखकर लेखक उनसे लिया गया पहला साक्षात्कार याद करता है। चारों तरफ तबाही, सुलगती इमारतों व लाशों को देखकर लेखक सोचता है – "यह सब किसी गहरे राजनीतिक षडयंत्र का नतीजा था या एक व्यक्ति के अहम, जिद और वास्तविकता से पूरी तरह कटे

---

23 *जगदीश चन्द्र रचनावली,* खण्ड : चार पृ. सं. 268

24 साहनी, भीष्म – *तमस* , राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2, 2007 पृ. सं. 132

होने का दुष्फल था या फिर एक आदर्श की प्राप्ति के लिए जान–बूझकर खरे मन से दी गई कुर्बानी थी – कुछ समझ में नहीं आ रहा था। शायद इसलिए कि ऐसी स्थितियों का ठीक विश्लेषण वे इतिहासकार ही कर पायेंगे जिनका इन घटनाओं में किसी प्रकार का भावनात्मक संबंध नहीं होगा।" (25)

नाटक –

'नेता का जन्म' नाटक रचनावली के चौथे खण्ड में संग्रहित है। गरीबी हटाने के लिए अमीरों के प्रयासों को खोखला बताकर उसपर व्यंग्य किया गया है। अमीर राजोरिया बताता है कि अच्छा है कि घरेलू नौकरों का नेता अमीर नौटियाल है यदि उन नौकरों के बीच से कोई नेता पैदा हो गया तो हमारे लिए बहुत मुश्किल हो जायेगा। अमीर जब भी सोचेगा अमीरों के हित में ही होगा। वह कहता है – "जो व्यक्ति एयर कंडीशंड कमरों में रहकर गरीबों के बारे में सोचता है परेशान होता है, उस जैसा बड़ा नेता और कौन हो सकता है।" (26)

जगदीश चन्द्र की रचनाओं के विषयवस्तु वैविध्यपूर्ण हैं। इनकी रचनाओं में गाँव रचा–बसा है। गाँव और गाँव के लोगों के संघर्षपूर्ण जीवन को अभिव्यक्त करने में लेखक को सफलता मिली है। लेखक ने प्रायः सभी उपन्यासों में कोई–न–कोई समस्या उठाई है। आम जीवन पर उस समस्या से पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषन भी कहानी के माध्यम से किया है। देवेन्द्र इस्सर के अनुसार –– 'जगदीश चन्द्र के उपन्यास समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए बड़ी समृद्ध

---

25 *जगदीश चन्द्र रचनावली*, खण्ड : चार, पृ. सं. 341

26 *वही*, पृ. सं. 416

सामग्री है।'[27] प्रश्न उठता है कि हिन्दी साहित्य को इतनी उत्कृष्ट रचनाएँ देने वाले लेखक का हिन्दी पट्टी में आखिर वह स्थान क्यों नहीं मिला है जिसके वे हकदार हैं। इसका कारण माना गया है कि 'जगदीश चन्द्र जब गाँव दलितों के समस्या पर उपन्यास लिख रहे थे तब मुख्यधारा के हिन्दी लेखन में मध्यवर्ग की संवेदना, दरकते मानवीय रिश्तों व निजता के मुद्दे प्रमुख थे। दलित–विमर्श और दलित आन्दोलन की शुरूआत नहीं हुई थी। दलित जीवन से संबंधित इनके तीनों उपन्यासों में सवर्णों के द्वारा दलितों के शोषण के साथ ही दलित समाज में व्याप्त अन्तर्विरोधों, अवसरवादिता व स्वार्थलोलुपता का भी चित्रण किया है। गैर दलित होने के कारण भी दलित चिंतन एवं आलोचना में इनका सम्यक मूल्यांकन नहीं हो पाया है।[28] 'धरती धन न अपना' उपन्यास में दलितों के जीवन की त्रासद स्थितियों का चित्रण किया गया है। दलित व सवर्ण स्त्रियों की सामाजिक एवं पारिवारिक स्थितियों को भी स्पष्ट किया गया है। सवर्ण स्त्री पितृसत्ता के द्वारा शोषित है तो दलित स्त्री का शोषण वर्णाश्रम व्यवस्था एवं पितृसत्ता दोनों के द्वारा होता है।

---

27 *जगदीश चन्द्र एक रचनात्मक यात्रा,* पृ. सं. 63

28 सिंह वैभव, *जगदीश चन्द्र : यथार्थवाद का शिल्पकार* (आलेख), नया ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञान पीठ, अंक 108, फरवरी 2012, दिल्ली –3,

द्वितीय अध्याय

'धरती धन न अपना' में स्त्री–जीवन

'धरती धन न अपना' में स्त्री–जीवन

किसी भी समाज की वास्तविक स्थिति के मूल्यांकन के लिए वहाँ के पिछड़े वर्ग की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक स्थितियों को समझना आवश्यक होता है। पिछड़े तबके में दलित, आदिवासी, स्त्री व विकलांग आते हैं। 'धरती धन न अपना' उपन्यास दलित जीवन के शोषण के विविध स्वरूपों की पहचान कराता है तथा स्त्रियों की सामाजिक , पारिवारिक व आर्थिक स्थिति को स्पष्ट करता है।

समाज के सम्यक विकास में स्त्रियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रखर आलोचक नामवर सिंह के अनुसार 'अगर समाज में स्त्री न हो तो समाज शव के समान है।' (1) परन्तु पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में न केवल उनकी भागेदारी को नकारा जाता है अपितु उनको हर प्रकार के अधिकारों से वंचित रखा जाता है।

स्त्रियों को समाज में अनेक प्रकार की समस्याओं से जूझना पड़ता है। समाज की सभी स्त्रियों की कुछ समस्याएँ तो समान होती हैं परन्तु कुछ भिन्न होती हैं। उपन्यास में वर्णित स्त्री पात्रों को समझने के लिए उन्हें दो वर्गों में बाँटा गया है –– सवर्ण स्त्री और दलित स्त्री। सभी स्त्रियों के सारी समस्याएँ एक जैसी नहीं होतीं। सवर्ण व दलित स्त्रियों की समस्याएँ कुछ तो एक जैसी होती हैं, कुछ अलग होती हैं। स्त्री होने के नाते पुरुष सत्तात्मक समाज में दोनों को शोषण झेलना पड़ता है जिसमें प्रमुख है यौन–हिंसा व घरेलू हिंसा। सवर्ण स्त्रियाँ अधिकांशतः आर्थिक रूप से सम्पन्न होती हैं। उन्हें अपने बच्चों व

---

1. *प्रकाशन समाचार* , राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2, प्रकाशन तिथि : 1,2, वर्ष 61, अंक 2, फरवरी 2013 पृ. सं. 24

परिवार का पेट भरने के लिए मजदूरी करने बाहर नहीं जाना पड़ता जिससे वे बाहरी लोगों के शोषण व हिंसा से सुरक्षित होती हैं। उनका शोषण अपने परिवारवाले ही करते हैं। परन्तु दलित स्त्रियों का शोषण कई गुणा बढ़ जाता है। स्वरूप रानी में अपनी कविता में दलित स्त्रियों की पारिवारिक एवं सामाजिक स्थिति का मार्मिक अंकन किया है ––

'अरे हाँ ... अपनी जिन्दगी को मैंने जीया कब?

घर में पुरुषाहंकार एक गाल पर थप्पड़

मरता है तो

गली में वर्ण आधिपत्य दूसरे गाल पर चोट करता है।[2]

दलित स्त्रियों को एक तो स्त्री होने के कारण दूसरा दलित तथा तीसरा गरीब होने के कारण तीन स्तरों पर शोषण झेलना पड़ता है।

कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण परिवार के भरण–पोषण के लिए दलित स्त्रियों को मजदूरी करनी पड़ती है, जहाँ मालिकों की झिड़कियाँ और गालियाँ सुनना तो आम बात है। वहाँ उनको यौन–उत्पीड़न भी झेलना पड़ता है। उसके बाद भी घर आकर अधिकांश स्त्रियों को अपने शराबी पतियों से मार–पीट व गाली–गलौज झेलना पड़ता है। श्रमजीवी स्त्रियों के संबंध में महादेवी वर्मा 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में लिखती हैं – "इनकी पारिवारिक स्थिति धनिक और साधारण श्रेणी की स्त्रियों से भिन्न है। कारण न वे अपने गृह का अलंकार मात्र समझी जाती हैं न ऐसी वस्तुएँ जिनके टूट जाने से गृहस्थ का

---

2 गुप्ता, रमणिका – *दलित चेतना साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार* ? समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली –31, पृ.सं. – 86

कुछ बनता बिगड़ता ही नहीं वे पुरुष के जीविकोपार्जन में सहयोग देती हैं, अपनी जीविका के लिए उसका मुख नहीं देखती। फलतः अपेक्षाकृत स्वावलम्बिनी हैं।" (3)

दलित–मजदूर स्त्रियाँ भी नाम–मात्र को ही स्वतंत्र हैं। दलित पुरुष भी आम पुरुष की तरह अपने घर की औरतों–लड़कियों को पर्दे में रखना पसंद करता है। स्त्रियों को काम पर भेजना उसकी मजबूरी है या कामचोरी जिससे बैठे–बिठाए रोटी मिल सके। इसके पीछे स्त्री को स्वतंत्रता– समानता देने की भावना नहीं होती। जैसे ही उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी होती है वह पत्नी आदि घर की स्त्रियों को घर की चार– दीवारी में ही कैद रखना चाहता है। सवर्ण स्त्रियों की अपनी कोई पहचान नहीं होती। पति के नाम से ही उन्हें पहचाना जाता है। दलित स्त्रियों को उनके नाम से भी बुलाया जाता है।

1. सवर्ण स्त्री –

'धरती धन न अपना' में सवर्ण पुरुष तो हैं पर सवर्ण स्त्रियों की उपस्थिति अत्यल्प है। दलित स्त्री व पुरुषों की उपस्थिति समान रूप से है। सवर्ण स्त्री के रूप में सर्वप्रथम चौधरानी की उपस्थिति चौधरी हरनाम सिंह के यहाँ होती है। चौधरी हरनाम सिंह के यहाँ प्रीतो की बेटी लच्छो गोबर उठाने जाती है। हरदेव उसका बलात्कार करता है। इज्जत के बदले गेहूँ के सिट्टे मिलते हैं। वह चौधरी के घर बासी रोटियाँ लेने जाती है। धेवरी लच्छो की झोली में सिट्टे देख चौधरानी को बता देती है। चौधरानी बाहर आकर सख्त लहजे में लच्छो से प्रश्न करती है – "नी, यह तूने क्या किया? ये सिट्टे तो बीज के लिए रखे थे। तू इन्हें क्यों उठा लाई है?"

---

3 वर्मा, महादेवी– *श्रृंखला की कड़ियाँ*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद –1, 2010, पृ. सं. 25

"चौधरानी जी मैंने अपने आप नहीं लिये। मुझे चौधरी हरदेव ने दिए हैं। कहता था इन्हें ढ़ोरा लग गया है। कहते–कहते लच्छो को पसीना आ गया।"

"कहर की धूप पड़ रही है। इन्हें ढोरा कैसे लग गया ? उस मोए मंगू को कई बार कहा है कि तबेले की कोठरी का दरवाजा खोलकर हवा लगने दिया करे। चौधरी को पता चल गया तो मेरी शामत आ जायेगी। तू इन्हें जो उठाने गई, मुझसे दाने मांग लेती। फेंक इन्हें।' चौधरानी ने लच्छो की ओर पाँव के ठोकर से टोकरी बढ़ाते हुए कहा। लच्छो ने सिट्टे टोकरी में डाल दिए और खाली झोली लिए बाहर आ गई।" (4)

उपरोक्त उद्धरण से जहाँ चौधरानी का दुर्व्यवहार व संवेदनहीनता प्रकट होता है, वहीं उसकी असमर्थता व विवशता भी। वह गृहलक्ष्मी होते हुए भी चौधरी के भय से आक्रांत है। वह लच्छो को दाने मांगने की बात तो कहती है पर सिट्टे वापस लेने के बाद उसे कुछ भी नहीं देती। लच्छो को खाली हाथ वापस आना पड़ता है। लच्छो की ओर टोकरी बढ़ाने का तरीका भी अपमानपूर्ण ही है। कुछ पल पूर्व लच्छो के साथ बलात्कार हुआ है। एक स्त्री होने के नाते लच्छो की घबराई और पसीने से तर–बतर हालत देख स्थिति को भाँपने की संवेदना का उसमें अभाव है। जब लच्छो उसे बताती है कि सिट्टे हरदेव ने दिए हैं तो क्या तब भी उसकी समझ में नहीं आया कि बीज के लिए रखे सिट्टे चौधरी हरदेव किस स्वार्थ के वशीभूत हो उसे दे रहा था? जबकि लच्छो की माँ प्रीतो बेटी की मनःस्थिति भांप लेती है। या तो चौधरानी सबकुछ समझते हुए भी उसे प्रकट नहीं करती, तथाकथित चमारनो की इज्जत उसकी नजर में कोई

---

4 चन्द्र, जगदीश – *धरती धन न अपना*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2, 2009, पृ. सं. 98

मायने नहीं रखती। चौधरियों की यौन–तुष्टि करना भी चमारनो की मजदूरी में शामिल मानती है। या फिर, आर्थिक रूप से सुदृढ़ व मजबूत चारदीवारी में रहने के कारण चौधरानी में इतनी क्षमता ही नहीं कि वह यह समझ सके कि दीन–हीन–दलित मजदूर स्त्रियों के साथ पुरुष वर्चस्व वाले समाज में क्या–क्या हो सकता है।

दूसरे पात्र के रूप में चौधरी मुंशी की पत्नी की उपस्थिति होती है। काली की चाची को ताप चढ़ता है। डॉक्टर बिशनदास उसे साबूदाना, चाय या दूध ही देने के लिए कहता है। काली हिम्मत कर चौधरी मुंशी के यहाँ जाता है। चौधरानी उसे थोड़ा–सा दूध तो देती है पर एहसान जताकर। साथ ही सलाह भी देती है कि 'तू किसी की नौकरी कर ले, अपने चमार की जरूरतें पूरी करनी ही पड़ती है पर हर किसी को तो दूध नहीं दिया जाता।' (5)

सवर्ण पुरुषों की तुलना में सवर्ण स्त्रियाँ अधिक कंजूस व अनुदार होती हैं। पुरुष यदा–कदा गरीबों की मदद भी कर देते हैं, भले ही स्वार्थवश ही, पर औरतें अपना कुढ़न दलित स्त्री–पुरुषों पर निकालती हैं, विशेष रूप से स्त्रियों पर अपना कुढ़न निकालती हैं। वे दूध बेचती भी हैं तो अपने बराबर की हैसियत वालों से बेचती हैं। अपने घर के जानवरों को दूध दे सकती है पर गरीब, दलित या मजदूर को नहीं दे सकतीं।

श्रम से जुड़ी होने के कारण दलित स्त्रियों में जहाँ सहयोग की भावना होती है, वहीं सवर्ण स्त्रियाँ प्रायः संकीर्ण व रूढ़िवादी होती है। वे स्वयं तो पुरुषों का शोषण झेलती हैं पर जब भी उन्हें मौका मिलता है

---

5 *धरती धन न अपना*, पृ. सं. 164

दलित स्त्री–पुरुष का शोषण करने में नहीं हिचकती। "पैतृकवादी वर्चस्व के तहत स्त्री और पुरुषों के परस्पर दायित्व इस प्रकार काम करते हैं कि स्त्री की यौन, आर्थिक, राजनीतिक और बौद्धिक अधीनता के बदले में उन्हें निचले वर्गों के स्त्री और पुरुषों का शोषण करने की शक्ति में पुरुषों के साथ हिस्सेदारी मिल जाती हैं।" (6)

दूसरी ओर, सवर्ण स्त्रियों की तुलना में दलित स्त्रियाँ आर्थिक रूप से अधिक स्वतंत्र होती हैं। यह स्वतंत्रता सवर्ण स्त्रियों को भी खटकती हैं। वे भी दलित स्त्रियों की तरह स्वतंत्र रहना तो चाहती है पर सामाजिक भय से व्यवस्था के प्रति विद्रोह नहीं कर पातीं। दलित स्त्रियों के प्रति उनके द्वेष का यह भी एक महत्वपूर्ण कारण है।

सवर्ण स्त्रियों को अपने पतियों या घर के अन्य पुरुषों के दलित स्त्रियों से संबंधों की जानकारी होती है। उन्हें दलित परिवार में होने वाले अवैध संतानों की भी जानकारी होती है, पर वे इसका विरोध करने का साहस नहीं कर पातीं उन्हें बचपन से ही ऐसे संस्कार मिले होते हैं जिससे उन्हें कुछ भी नाजायज या अवैध नहीं लगता। कभी इसे पुरुष के शानो–शौकत या पुरुषत्व के प्रतीक के रूप में देखा जाता है तो कभी स्त्री (सवर्ण स्त्री) उसे बेबसी के रूप में झेलती है। दोनों ही स्थितियों में दलित स्त्री का शोषण व तद्जनित वेदना उसकी सोच से अनुपस्थित होता है। उसके अनुसार शोषित ही अपराधी है। उसकी नजरों में दलित स्त्री पुरुषों को मोह–जाल में फाँसने वाली, तुच्छ व

---

6 आर्य, साधना, और अन्य – (सम्पा.) *नारीवादी राजनीति संघर्ष और मुद्दे*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली –7, 2010, पृ. सं. 5

हेय है जो चन्द रूपयों या थोड़े से अनाज के लिए अपने देह का सौदा तक कर देती है।

तथाकथित चमादड़ी (उपन्यास में वर्णित गाँव के दलितों की बस्ती) के बग्गे से चौधरी बूटा सिंह के लड़के पालो की मार–पीट होती है। चौधरी मुंशी की हवेली में पंचायत बुलाई जाती है। तथाकथित चमार के लड़के की इतनी हिम्मत कि चौधरी के लड़के पर हाथ उठाये, चौधरी अत्यधिक क्रोधित होते हैं। पंचायत के लिए चौधरी चारपाई पर बैठते हैं, दलित जमीन पर। चौधरानियाँ छतों की मुंडेरों पर बैठकर पंचायत सुनती हैं। 'चमादड़ी' का बाबे फत्तू चौधरियों से कहता है 'हमारा काम है आपकी सेवा और सहायता करना और आपका काम है हमारी पालना करना, हमारी हाजतें पूरी करना। पहले लड़ाई–झगड़ा तो दूर, कोई चमार चौधरियों के सामने आँख उठाकर भी नहीं देखता था। जब जाट और चमार का खून मिलने लगा तो यह गड़बड़ होने लगी। अगर आज आपके खून ने आपके बच्चे को मारा है तो आपको दुःख क्यों हुआ?'

बाबे फत्तू बग्गे की ओर संकेत करते हुए कहता है – "इसे देखकर कोई कह सकता है कि यह चमार की औलाद है ?" (7)

बाबे फत्तू की बातें सुनकर चौधरियों की गर्दनें झुक जाती हैं। आस–पास के मकानों की छतों पर बैठी स्त्रियाँ मुँह बन्द करके हँसने लगती हैं।

इस प्रकरण से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि चौधरानियों को अपने चौधरियों के 'चमादड़ी' की औरतों से शारीरिक संबंधों व अवैध संतानों की जानकारी है और उसे वे सहज रूप में ले रही हैं नहीं तो उन्हें हँसी नहीं आती

---

7 *धरती धन न अपना,* पृ. सं. 172

बल्कि ग्लानि से उनकी भी गर्दनें झुक जाती या चौधरियों पर क्रोध आता। यह भी हो सकता है कि उनकी हँसी मनोरंजनात्मक न होकर उपहासात्मक हो। चौधरियों का अपमान देख–सुन उन्हें हँसी आई हो।

ऐसा नहीं है कि सवर्ण परिवारों में अवैध रिश्ते, यौन–उत्पीड़न, बलात्कार या अवैध संतानें नहीं होतीं, परन्तु वहाँ शोषक परिवार वाले या रिश्तेदार होते हैं। संतासिंह कहता भी है 'जाट लोग तो सिर्फ अपनी सगी बहन की ही सौगंध खाते हैं।' (8)

उपन्यासकार ने दिखाया है कि आर्थिक रूप से 'चमादड़ी' चौधरियों पर निर्भर है पर चौधरियों का भी उनके बिना जीवन मुश्किल है। अपनी जरूरतों के लिए वे भी 'चमादड़ी' पर निर्भर हैं। चौधरानियाँ भी अपने दैनिक कार्यों के लिए दलित स्त्रियों पर आश्रित हैं। उन्हें 'चमादड़ी' की स्त्रियों से स्नेह भी है। जब बहिष्कार के बाद तथाकथित चमारने उनके यहाँ सफाई करने जाती है तो वे उन्हें देख प्रसन्न होकर कहती है – "नी तू पाँच–छः दिन नहीं आई तो मन उदास होने लगा था।" (9)

परन्तु उनकी सारी सहृदयता एवं स्नेह वहीं तक सीमित रहती है जहाँ तक उनके तथाकथित नियमों का उल्लंघन या उनके स्वार्थों का हनन न होता हो। जैसे ही उनके प्रतिकूल कुछ होता है वे सहृदयता के खोल से निकलकर अपना वास्तविक रूप अख्तियार कर लेती हैं। इसका उदाहरण वहाँ देखने को मिलता है जब ज्ञानो के गर्भवती होने की शंका चौधरी मुंशी की पत्नी को होती है। वह जस्सो को सावधान करती है। चौधरानी के दूसरे दिन पूछने

---

8 *धरती धन न अपना,* पृ. सं. 104

9 *धरती धन न अपना,* पृ. सं. 260

पर जस्सो कहती है कि उसका शक निराधार है पर यह कहते हुए उसकी जबान काँप जाती है और चौधरानी का शक और भी पक्का हो जाता है। वह 'चमादड़ी' की अन्य सत्रियों को भी यह बातें बता देती है।

पादरानी दलित स्त्रियों से छुआछूत का भाव नहीं रखती। लच्छो को कढ़ाई–सिलाई सिखाती है। 'चमादड़ी' के कुएँ के बरसात के पानी में डूब जाने पर चमादड़ी की औरते उनके घर नल से पानी भरने जाती है। उनके कीचड़–सने पैरों से नल के पास कीचड़ जमा हो जाता है। एक स्त्री का बच्चा वही टट्टी कर देता है। पादरानी की डाँट सुन वह औरत घबराकर हाथ से ही टट्टी साफ कर देती है और बच्चे को बिना धोए गोद में ले लेती है। यह देख पादरानी का संयम टूट जाता है। वह ड्योढ़ी के दरवाजे पर ताला लगा कर बैठक के दरवाजे को अन्दर से बंद कर लेती है।

पादरानी को अपने घर की सफाई का ख्याल रहता है, परन्तु वह यह नहीं सोचती कि उसने पानी न दिया तो चमादड़ी के लोग कौन–सा पानी पियेंगे। जाति के आधार पर छुआछूत न होने पर भी क्या यहाँ वर्गगत असमानता प्रमुख नहीं हो जाता? दरअसल पादरानी के अवचेतन में अपने धनी, समृद्ध, सफाई पसन्द, नफासतपूर्ण जीवन के लिए विशिष्टता का बोध है। वह ऊपर से चाहे कितनी भी समानता की बात करे, चमादड़ी के लोगों के लिए उसके मन में समानता का भाव नहीं है। वे लोग पादरानी के लिए कोई अस्तित्व नहीं रखते। यदि वह उन्हें मनुष्य–मात्र समझती तो पीने का पानी अवश्य ही भरने देती। तात्पर्य यह है कि गरीब के लिए सभी धर्मों में समान स्थितियाँ हैं। समानता एवं भाईचारे के आकर्षण में हिन्दू धर्म के छुआछूत से त्रस्त व्यक्ति धर्म–परिवर्तन कर सिक्ख, ईसाई या मुसलमान भले ही बन जाए, उस धर्म में भी उसे भेदभाव का सामना करना ही पड़ता है। उस धर्म के लोग धर्म–परिवर्तित कर आए नए लोगों

को हेय दृष्टि से ही देखते हैं। इसका उदाहरण उपन्यास का पात्र नंदसिंह और उसका परिवार है। उपन्यासकार ने हिन्दू–धर्म के अवगुणों के साथ ईसाई–धर्म के अन्तर्विरोधों को भी उजागर किया है।

2. दलित स्त्री –

उपन्यास की दलित स्त्रियों में प्रमुख हैं प्रतापी, निहाली, बेबे हुकमा, बन्तो, प्रसिन्नी, प्रीतो, जस्सो, लच्छो व ज्ञानो। 'चमादड़ी' की औरतें ग्रामीण औरतों की तरह खाली समय में चुगलखोरी तथा एक दूसरे की निंदा किया करती हैं। वे चौधरियों के यहाँ गोबर, कूड़ा–करकट उठाने तथा सफाई करने जाती हैं। वहाँ उनका यौन–शोषण भी होता है। लोक–लज्जा के डर से कोई उसे प्रकट नहीं करती तो कोई स्वार्थवश उसे सहन करती है। खाली समय में ये सभी चो के चौगान में बैठ एक–दूसरे से हँसी मजाक किया करती हैं। बात–बात में गाली देना उनके स्वभाव में शामिल है।

काली की चाची प्रतापी का व्यक्तित्व ममतामयी और स्नेहिल है। उसकी अपनी कोई संतान नहीं है। वह और उसका पति सिद्धू काली को अपनी संतान की तरह पालते हैं। जब काली कानपुर चला जाता है तो प्रतापी उसके इंतजार में दिन काटती है। रेवड़ से बिछड़ी बछिया को देखकर वह खूब रोती है। उसे अपना काली याद आता है। वह सोचती है कि मेरा काली परदेश में ऐसे ही डाँवा–डोल और खोया–खोया रहता होगा। उसके हृदय में रह–रह कर हौल–सा उठता है। काली जब कानपुर से वापस घर आता है तो प्रतापी दहलीज के दोनों ओर सरसों का तेल टपकाने के बाद उसे कोठरी में प्रवेश करने देती है। काली के लौटने की खुशी में वह पूरी 'चमादड़ी' में चुटकी–चुटकी भर शक्कर बाँटती है। प्रतापी जिसने सारी जिंदगी गरीबी और फटेहाली देखी है, काली के पास बहुत सारे रूपये देखकर उसे पहले तो

आश्चर्य होता है फिर घबराहट होती है कि कहीं कोई चोरी न कर ले। वह काली से ट्रंक में ताले लगाकर उसे कोने में छुपाने के लिए कहती है।

जिस समाज में दो–जून की रोटी व तन ढकने के लिए आवश्यक कपड़े ही बड़ी मुश्किल से मिलते हैं, जिन्हें बदबूदार बस्तियों की कच्ची व धुप्प अंधेरी कोठरियों में रहना पड़ता है उन्हें आवश्यक खाद्य–सामग्री भी एक साथ खरीदना आश्चर्यजनक एवं मूर्खता का परिचायक लगता है।

चाची अपने जीवन के अनुभवों से त्रस्त है। काली जब आठ आने का तिल्ली का तेल मँगवाने के लिए कहता है तो चाची उसे नसीहत देती हुई कहती है – "मैं रोज का रोज मँगवा लूंगी। एक बार आधी बोतल मंगवा ली तो माँगने वालों की यहाँ छावनियाँ उतर आयेंगी और बूँद–बूँद करके दो दिन में ही बोतल ले जायेंगे।" (10)

काली के न मानने पर वह गुस्से में एक रूपया दे देती है और कहती है – "इस तरह घरों के गुजारे नहीं चलते। बाकी लोगों को देख, नमक भी डंग–के–डंग लाते हैं।" (11)

इसी तरह वह काली को मकई की रोटियाँ खाने के लिए देती है। काली के यह पूछने पर कि मकई की रोटी क्यों बनाई है क्या गेहूँ का आटा खत्म हो गया है, चाची कहती है – "खत्म तो नहीं हुआ, काका। रोज गेहूँ की रोटी खायेंगे तो गुजारा कैसे चलेगा। हमारे घरों में तो गेहूँ की रोटी सौगात

---

10 *धरती धन न अपना,* पृ. सं. 122

11 *वही*, पृ. सं. 123

समझी जाती है। मुहल्ले में जाकर देख ले, लोग–बाग आम मकई और बाजरा ही खाते हैं।" (12)

प्रतापी बहुत ही सहृदय स्त्री है, वह काली को लेकर हमेशा चिंतित रहती है। जब कोई आकर उससे कहता है कि काली को पकड़ने थाना आ रहा है, वह चिंतित हो रोने लगती है, तो कभी बेहोश भी हो जाती है। प्रीतो जब काली को बद्दुआ देती है, चाची भी उसके परिवार वालों को गालियाँ देती है।

पक्का मकान बनवाने के काली के निर्णय से चाची को प्रसन्नता होती है। वह सोचती है कि काली बाप–दादे का नाम उँचा करेगा। कोई राहगीर चौबारे को देखकर पूछेगा तो लोग–बाग बतायेंगे कि यह चौबारा माखे के पुत्र काली का है। यह सोचकर चाची के अन्दर हौल–सा उठता है। वह सोचती है कि काश! उसका भी एक बेटा जिंदा रहता और वह भी चौबारा बनाता। लोग पूछते तो उन्हें उत्तर मिलता कि वह सिद्धू के पुत्र का है। चाची अपने मृत पति व बच्चों को याद कर खूब रोती है। फिर मन को तसल्ली देती है कि बेटा क्या भतीजा क्या, दोनों में कोई फर्क नहीं होता। और फिर काली भी तो उसका बेटा ही है। चाची के मातृत्व को उभारने में उपन्यासकार को सफलता मिली है। प्रतापी के माध्यम से लेखक ने दिखाया है कि संतान की चाहत स्त्री में प्रबल होती है। इसके साथ ही प्रतापी का चरित्र ऐसा है कि वह निःसंतान होने पर भी काली के प्रति कोई बैर–भाव नहीं रखती। उसे अपनी संतान की तरह प्यार करती है।

ताई निहाली का मातृत्व भी ऐसा ही है। जीतू को बिना किसी

---

12 *धरती धन न अपना,* पृ. सं. 141

गलती के चौधरी हरनाम सिंह मारता–पीटता है। ताई निहाली को हरनाम सिंह पर गुस्सा आता है पर उसे अपनी बेबसी का अहसास है। वह जीतू को ही भला–बुरा कहती है और रोती है। विधवा निहाली के हृदय में अपने इकलौते पुत्र जीतू के लिए अगाध स्नेह है।

'चमादड़ी' में मंगू को छोड़कर किसी के घर गाय–भैंस नहीं है। दूध, घी, लस्सी के लिए वे चौधरियों पर आश्रित हैं। ये चीजें उनके लिए सौगात जैसी हैं। आखिर ऐसी अप्राप्य वस्तु को कोई अपने प्रियजन को देने के बजाय किसी और को उसमें हिस्सेदार कैसे बना सकता है। एक बार जब निहाली जीतू के लिए कहीं से लस्सी मांगकर लाती है और रास्ते में उसे काली मिल जाता है तो वह चिंतित हो जाती है कि जीतू अपनी आधी लस्सी काली को पिला देगा। काली को अपने घर आने से रोकने के लिए वह कहती है – "काका, जीतू तेरे पास तो नहीं था? सबेरे मुँह–अंधेरे ही निकल गया था। अभी तक नहीं आया पता नहीं कहाँ चला गया। ...तू कहाँ जा रहा है?" (13) काली उसकी मनःस्थिति को भाँप लेता है और उसके घर नहीं जाता।

महादेवी वर्मा ने 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में स्त्रियों के अर्थ–स्वातंत्र्य के प्रश्न पर विचार करते हुए लिखा है कि "अर्थ सामाजिक प्राणी के जीवन में कितना महत्व रखता है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। इसकी उच्छृंखल बहुलता में जितने दोष हैं वे अस्वीकार नहीं किए जा सकते, परन्तु इसके नितान्त अभाव में जो अभिशाप हैं वे भी उपेक्षणीय नहीं।" (14)

महादेवी का कथन 'चमादड़ी' की औरतों के यौन–शोषण के मूल

---

13 *धरती धन न अपना,* पृ. सं. 90

14 वर्मा, महादेवी– *श्रृंखला की कड़ियाँ,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद–1, 2008, पृ.सं. 89

कारण को उजागर करता है। आर्थिक रूप से चौधरियों पर पूरी तरह आश्रित रहने के कारण तथा रोजगार की वैकल्पिक व्यवस्था न होने के कारण 'चमादड़ी' की औरतों को यौन–शोषण झेलना पड़ता है। प्रीतो ने जस्सो से कहा भी है — "मैं तो अपनी लच्छो को चौधरियों की हवेलियों में भी न जाने दूँ, लेकिन क्या करूँ मजबूरी है।" (15) आर्थिक रूप से चौधरियों पर पूरी तरह निर्भर होने के कारण वे शोषण का विरोध भी नहीं कर पाती। प्रीतो का पति निक्कू कामचोर, आलसी और नशेबाज है। वह अपने शारीरिक संबंधों के द्वारा ही अपने परिवार का पालन–पोषण करती है, इसके संकेत उपन्यास में अनेक स्थानों पर मिलते हैं।

मंगू जब हरदेव को लच्छो के साथ बलात्कार के लिए भड़काता है तो संकेत करता है कि यह प्रीतो की बेटी है। जब हरदेव उसके कहने का मतलब नहीं समझ पाता तो मंगू कहता है – "चौधरी क्या तुम प्रीतो को नहीं जानते।"

"जानता हूँ"

"तो इसे भी जानो। यह उसी घोड़ी की बछेरी है जिस पर कभी बड़ा चौधरी बहुत मेहरबान था।" (16)

गाँव वालों का विश्वास है कि प्रीतो के यहाँ सवर्णों के बच्चे पैदा हुए हैं। इसे उपन्यास के अनेक प्रसंगों में देखा जा सकता है। प्रीतो जब काली

---

15 *धरती धन न अपना,* पृ. सं. 124

16 *वही,* पृ. सं. 96

के पक्के रंग पर व्यंग्य करती है तो चाची उस पर कटाक्ष करती हुई कहती है –"प्रीतो, तू सदा लागबाजी करती है। चमार का बेटा तो काला ही होगा। गोरे तो तेरे घर में ही पैदा हुए हैं।" (17)

चाची जब सन्तासिंह से प्रीतो की भतीजी के साथ काली के रिश्ते की बात करती है तो सन्तासिंह भी प्रीतो के बच्चों का मजाक उड़ाते हुए काली से कहता है – "प्रीतो की भतीजी से कभी ब्याह न करना। अगर वह अपनी बुआ जैसी निकली तो तुम्हें अपने बच्चों की पहचान करना भी मुश्किल हो जायेगा।" (18)

'धरती धन न अपना' में अभिव्यक्त दलित समाज की सामाजिक स्थिति तो निम्नतर है ही, उनकी आर्थिक स्थिति भी बेगार जैसी है। दरअसल आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण ही उनका अनेक प्रकार से शोषण होता है। जाट भू–स्वामी उन्हें 'चमार कुत्ता' कहकर बुलाते हैं। बेगार के बदले बासी सूखी रोटियों पर गुजारा करने या उपकार अथवा दान स्वरूप मिले अन्न के दानों पर 'चमादड़ी' पूरी तरह निर्भर है। उनकी स्थिति ऐसी है कि वे दूध का स्वाद तक तो भूल ही गए हैं, घर में गेहूँ का आटा और शक्कर होना भी उनमें आश्चर्य का भाव पैदा करता है।

प्रीतो के द्वारा मक्की या बाजरे का आटा माँगने पर काली उसे गेहूँ का आटा देता है। वह चाची से गुड़ माँगती है। चाची उसे बताती है कि काली शक्कर की चाय पीता है तो प्रीतो के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता। वह सोचती है कि इसीलिए काली इतना अक्लमंद है। फिर सोचती है कि उन लोगों

---

17 *धरती धन न अपना,* पृ. सं. 150

18 *वही* पृ. सं. 107

ने अच्छे कर्म किए हैं इसीलिए सुख भोग रहे हैं। प्रीतो की यह सोच दलित समाज में व्याप्त गरीबी, अभाव व दरिद्रता को ही दर्शाता है, जिसमे जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करना ही धनाढ्य होना माना जाता है। प्रीतो को अचानक ही काली बहुत अमीर लगने लगता है। प्रीतो कहती भी है – 'गरीब आदमी जब भी बात करेगा तो रोटियों ही की करेगा।' (19)

प्रीतो को दुनियादारी की समझ है। वह पिछड़े तबके की स्त्रियों का हवेलियों में होने वाले शोषण से भलीभाँति परिचित है। अपने बलात्कार के पश्चात् जब लच्छो घर आती है तो उसकी उदासी और मायूसी देख जीवन के अनुभवों के कारण प्रीतो सबकुछ समझ जाती है। लेखक ने इसका संकेत दिया है –"प्रीतो उसकी ओर ध्यान से देखती रही। फिर उसका दिल पसीजने लगा। वह एकदम ही इस तरह चुप हो गई जैसे उसे गहरी चोट पहुँची हो। वह बुत की भाँति खड़ी रही। बच्चे उसके हाथ से रोटियाँ झपट आपस में लड़ने लगे। फिर वह जैसे नींद से जाग उठी और बच्चों को गालियाँ देती हुई उनसे रोटी के टुकड़े छीनने लगी।" (20)

गाँव की हर अच्छी–बुरी खबर में नमक–मिर्च लगाकर चारों तरफ फैलाने का कार्य प्रीतो ही करती है। काली के घर बनाते समय मंगू के भड़काने पर पैसे की लालच में वह काली से झगड़ा कर बैठती है परन्तु काली के नम्र रवैये से शांत हो जाती है।

प्रीतो में चाहे जितने भी अवगुण हों, एक माँ के रूप में वह अपने कर्तव्यों को अच्छी तरह से जानती है। वह अपने पति की तरह दायित्वहीन नहीं

---

19 *धरती धन न अपना,* पृ. सं. 211

20 *वही,* पृ. सं. 101

है। बहिष्कार के समय भूख से बिलखते बच्चों को नहीं देख पाती और पाँचवे दिन वह मंगू के पास फरियाद लेकर जाती है कि वह अमरू और उसके बापू को काम दिला दे। परन्तु जब काली उसे अपना सारा अनाज दे देता है तो वह जस्सो के कहने पर भी नहीं मानती। वह कहती है कि 'जब सारा मुहल्ला जायेगा तभी मेरा अमरू जायेगा।' (21)

प्रीतो की बेटी लच्छो भी उसके नक्शेकदम पर चलती है। उसे अपनी स्थिति पर दुःख होता है। पर वह उसे अपनी नियति समझ कर चुपचाप बर्दाश्त कर लेती है। अपनी माँ को भी अपनी इज्जत लुटने की बात नहीं बताती। वह चुपचाप रोती है और सोचती है – "माँ घर से आटा उधार मांगने गई तो आटा ले आई। अमरू देगचा बेचकर आटा और गुड़ दोनों ले आया। लेकिन वह अपना सबकुछ लुटाकर भी खाली हाथ वापस आ गई।" (22)

जाट– चौधरियों के यौनेच्छाओं की पूर्ति के लिए चमादड़ी की औरतों को विवश होना पड़ता है। उपन्यास से स्पष्ट होता है कि इससे चमादड़ी की शायद ही कोई स्त्री बची हो। उन्हें चौधरी यौन–तुष्टि व मनोरंजन का साधन मानते ही हैं, स्वयं चमादड़ी के मर्द भी इसके लिए जिम्मेदार हैं। एक ओर मंगू लच्छो को अपनी माशूक कहता है दूसरी ओर हरदेव को उसके साथ बलात्कार के लिए उकसाता है। मंगू के समक्ष ही ज्ञानो के संबंध में दिलसुख और बलवन्ते अश्लील बातें करते हैं, मंगू उन्हें कुछ नहीं कहता। सबसे बड़ा कारण आर्थिक तंगी, गरीबी व अपनी अस्मिता के लिए जागरूकता का अभाव है। यही कारण है कि उन्हें कुछ भी असहज नहीं लगता।

---

21 *धरती धन न अपना,* पृ. सं. 259

22 *धरती धन न अपना,* पृ. सं. 103

एक सहृदय, हँसमुख व मानवीय चरित्र के रूप में बन्तु की पत्नी प्रसिन्नी का चित्रण उपन्यास में हुआ है। काली और ज्ञानो के रिश्ते की परवाह न करते हुए ज्ञानो का रिश्ता अपने मौसेरे भाई से करवाना चाहती है। प्रसिन्नी जस्सो को समझाते हुए कहती है – कि कच्ची उम्र में कौन नहीं गलती करता पर ज्ञानो जब सबके समक्ष काली को अपना भाई मानने से इन्कार कर देती है तो प्रसिन्नी मंगनी तोड़ देती है।

'चमादड़ी' की औरतें जब हँसी–मजाक या गाली–गलौज करती हैं तो चौधरियों से अपने संबंध उजागर करती हैं। उनके मन में इसके लिए कुंठा का कोई भाव नहीं है। प्रसिन्नी पंडित संताराम के पाखंड की कलई खोलती है कि किस प्रकार संताराम रक्खिए से यौन–तृप्ति करना चाहता था। इसके लिए उसे नए सूट और पैसे देने की लालच दे रहा था। प्रीतो कहती है कि वैसे तो वह हमें देख दूर से ही थू–थू, दूर–दूर करता है।

इस तरह पुरुष वर्ग की स्वार्थपरता का पर्दाफाश होता है कि वह स्त्रियों को अपनी हवस का शिकार बनाने के लिए किस–किस तरह के हथकंडे अपनाता है। वह निर्धन स्त्रियों को पैसे, कपड़े व खाने–पीने की वस्तुओं का लालच देता है, सदभावना के मीठे बोल बोलता है, उससे भी काम न बने तो बलात्कार करता है। संताराम जैसे धर्म के ठेकेदारों के लिए छूत खान–पान तक सीमित है। काम–तृप्ति के लिए चमादड़ी की औरतें अछूत नहीं लगतीं। लेखक ने पुरुष वर्चस्ववादी समाज की विद्रूपताओं को रेखांकित किया है। 'गोदान' का मातादीन भी सिलिया को अपनी रखैल बनाकर तो रखता है पर उसकी बनाई हुई रसोई नहीं खाता। पुरुष –प्रधान समाज अपने फायदे के अनुरूप ही नियम बनाता है।

'चमादड़ी' की औरतों में बेबे हुकमा सबसे बुजुर्ग और समझदार है। वह सबको अच्छी नसीहतें देती है।

ज्ञानो की माँ जस्सो का चरित्र अन्य दलित स्त्रियों से अलग नजर आता है। वह प्रीतो के भड़काने पर अपनी लड़की को नहीं डाँटती। जब ज्ञानो प्रीतो की बातों से आहत हो रोती है तो जस्सो उसे ही समझाती है – "तू क्यों रोती है। उसकी तो आदत है। उसके कहने से तू बुरी थोड़े ही हो जायेगी। जा अपना काम कर।" (23)

भारतीय ग्रामीण समाज की आम धारणाओं और विश्वासों से दलित स्त्रियाँ भी प्रभावित हैं। जस्सो ज्ञानो पर प्रारंभ में अधिक बंदिशें नहीं लगाती लेकिन जैसे ही उसे काली से ज्ञानो के मेल–जोल की खबर मिलती है वह भी आम स्त्री (एक माँ) की तरह पहरेदारी शुरू कर देती है।

काली के साथ बेटी के मेल–जोल से परेशान जस्सो उसके रिश्ते की बात करती है। प्रीतो अपने रिश्ते के एक लड़के, जो काना है, से ज्ञानो की शादी करवाना चाहती है। जस्सो उसे डाँट देती है। प्रीतो उससे कहती है कि तेरी लड़की भी कोई सुच्चा मोती नहीं है उसे तो कोई लूला–लँगड़ा व काना ही मिलेगा। बिरादरी की अन्य औरतें भी रिश्ते बताती हैं जिसमें कोई चेचक का खाया होता है तो कोई टायफाइड का मारा। जस्सो परेशान हो रो उठती है और ज्ञानो को भला–बुरा कहती है। अपनी बेटी के लिए वह अच्छे रिश्ते की तलाश जारी रखती है।

ज्ञानो के गर्भवती होने की बात जानकर कई बार जस्सो की इच्छा

---

23 *धरती धन न अपना,* पृ. सं. 124

होती है कि वह काली से उसकी शादी करा दे। परन्तु समाज का सामना करने का साहस उसमें नहीं है। वह पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था से भयभीत है। जस्सो यहाँ पितृसत्तात्मक मूल्यों का ही पोषण करती है, क्योंकि पुरुष –प्रधान समाजिक संरचना स्त्रियों को इस तरह से अपने अधीन करती है कि उन्हें अपने अधीनता का अहसास भी नहीं हो पाता। वस्तुतः उनमें एक स्त्री के रूप में चेतना का कोई भाव शेष नहीं रह जाता। उन्हें वही सही लगता है जो पितृसत्ता उनसे करवाती है। ज्ञानो की मृत्यु का कारण प्रत्यक्ष रूप में न उसका भाई मंगू है, न ही जमींदार–चौधरी। ज्ञानो को जहर उसकी माँ जस्सो देती है तो उसी पुरुष वर्चस्ववादी समाज के भय से। अतः अप्रत्यक्ष रूप में ज्ञानो की मौत का जिम्मेदार वह समाज व्यवस्था है जिसमें वे लोग रह रहे हैं। एक माँ के अन्तर्द्वन्द्व को उभारने में लेखक को सफलता मिली है।

ज्ञानो का गर्भ गिराने के लिए वह अनेक घरेलू उपाय करती है। असफल होने पर अन्ततः उसे जहर दे देती है। यह जस्सो के चरित्र का सबसे कमजोर पक्ष होने के साथ ही स्वाभाविक भी होता है। गाँव की अनपढ़, गँवार, गरीब, दलित स्त्री कुँवारी बेटी को माँ बनते नहीं देख सकती और न ही अपने ही गाँव, बिरादरी व गोत्र के लड़के से शादी करने जैसा बड़ा कार्य कर सकती थी। अतः उसका निर्णय ग्रामीण जीवन के कटु एवं नग्न वास्तविकता को उजागर करता है।

इस संबंध में भगवान सिंह का मत है कि "... ऐसी बिरादरी में, जिसकी बहुओं–बेटियों को जमींदारों की दुर्लति आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए विवश होना ही पड़ता है, एक सेक्ससहिष्णु नैतिकता अपना ली जाती है। इसकी पुष्टि इसी उपन्यास में एकाधिक स्थलों पर बड़े मुखर रूप में की गई है। अतः मुक्त सेक्स संबंध, जिससे कोई बेदाग बचा ही नहीं है, न तो आपराधिक प्रतीत

होते हैं न ही सामाजिक दृष्टि से इतने रोधक। फिर इनमें विधवाओं तक के विवाह की छूट होती है। विवाह सामान्यतः तो बहुत छोटी उम्र में हो जाते हैं – यह क्रम अब आकर कुछ कम हुआ है – और गर्भवती लड़कियां भी सादर विवाहित हो जाती हैं। अतः ज्ञानो की माँ को जिस धर्मसंकट में डालकर लेखक ने उसकी हत्या कराई है, वह अस्वाभाविक है जिसके मूल में लेखक की निजी मध्यवर्गीय मान्यताओं को एक भिन्न सामाजिक स्थिति पर आरोपण ही माना जा सकता है।" [24]

इस बिरादरी की स्त्रियों को जमींदारों की यौन– तृप्ति का साधन बनना पड़ता है, इनमें विधवा विवाह भी मान्य है, गर्भवती लड़कियों का विवाह धोखे में तो किया जा सकता है परन्तु शायद ही कोई दलित परिवार हो जो सार्वजनिक रूप से गर्भवती लड़की को अपने घर की बहू बनाये। इस संबंध में आम भारतीय समाज की रूढ़ियाँ वहाँ भी देखने को मिलती हैं। लड़की अगर भू–स्वामियों या जमींदारों के द्वारा गर्भवती होती है उस परिप्रेक्ष्य में प्रभुवर्ग अपने अधीनस्थ किसी दलित परिवार पर दबाव डाल कर उस लड़की की शादी वहाँ करवा सकता है, लेकिन यहाँ ज्ञानो और काली एक ही वर्ग के हैं। विधवा स्त्री की शादी या अन्य कारणों से दूसरी शादी अलग बात है और कुँवारी लड़की का गर्भवती होना अलग बात। दलित समाज भी यहाँ पितृसत्तात्मक मूल्यों से ही संचालित होता है और व्यवस्था को चुनौती देने वालों को वही सजा दी जाती है जो ज्ञानो को दी गई। उपन्यासकार ने लिखा भी है "बंजर जमीन, बाँझ औरत और प्रेम की मारी मुटियार को कोई पसन्द नहीं करता"। [25]

---

24 चमनलाल –*जगदीश चन्द्र दलित जीवन के उपन्यासकार*, आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा) 2010, पृ. सं. 80

25 *धरती धन न अपना*, पृ. सं. 267

भारतीय समाज में बाँझपन भी औरत के लिए कलंक जैसा बन जाता है। माँ न बनने पर स्त्री को ही दोषी मान लिया जाता है। यह जानने की कोशिश नहीं की जाती कि पुरुष में भी कमी हो सकती है।

ज्ञानो की मृत्यु के बाद जब मंगू काली पर क्रोधित हो उसे मारने–पीटने की बात करता है तो जस्सो उसे समझाते हुए कहती है – "पुतरा, पहले इस काम को सहेज ले। उसे बाद में देख लेंगे। वह इस गली में जिंदा नहीं रह सकता। जो माँ अपनी कोखजाई बेटी को जहर दे सकती है वह उसे भी जीता–जागता नहीं रहने देगी।" (26) इससे काली के प्रति जस्सो के क्रोध, घृणा व बदले की भावना की जानकारी मिलती है।

दलित स्त्री पात्रों में सबसे सशक्त चरित्र ज्ञानो का है। कई मामले में हम देखते हैं कि वह काली से भी अधिक स्वाभिमानी, दृढ़प्रतिज्ञ और निडर है। वह हमें गोदान की धनिया की याद दिलाती है। काली ज्ञानो को पहली बार जीतू के घर देखता है। उसकी आँखों के सामने छः वर्ष पूर्व की एक बेबाक, निडर, झगड़ालू और खुले बालों वाली लड़की घूम जाती है जो सारा दिन छोटी उम्र की बछेरी की तरह गलियों में घूमती–फिरती थी। कहीं गमी हो या शादी, झगड़ा हो या फिसाद, वह सारा दिन वहीं मंडराती रहती थी।

उपन्यास के आरम्भ से ही ज्ञानो का विद्रोही तेवर उभरने लगता है। चौधरी हरनाम सिंह जब जीतू को मारता है तो चमादड़ी के मर्द उसके भय से न कुछ कहते हैं न बीच–बचाव करते हैं। गालियाँ सुनकर मुस्करा देते हैं जैसे चौधरी ने उन पर फूल फेंके गए हों, औरतों की तो बात ही क्या। पर ज्ञानो

---

26 *धरती धन न अपना,* पृ. सं. 282

चौधरी और मंगू को दबी जबान से गालियाँ देती है। अपनी माँ और बेबे हुकमा के मना करने पर कहती है – बेबे, क्या करूँ। नाजायज बात देखकर मुझे गुस्सा आ जाता है। चुप नहीं रहा जाता। मजमे से अलग खड़े काली को देखकर वह सोचती है कि यदि वह व्यक्ति बाहर का आदमी हुआ तो यही सोचेगा कि घोड़ेवाहा के चमार बहुत बेगैरत हैं। मुँह खोले बिना ही मार खा लेते हैं। ज्ञानो को शर्म महसूस होता है।

काली ताई निहाली से जख्मी जीतू को चाय देने के लिए कहता है। निहाली दूध का रोना रोते हुए बताती है कि गली में तो सिर्फ मंगू के घर में ही भैंस है। वहाँ से दूध तो क्या खाली बर्तन भी वापस नहीं मिलेगा। ज्ञानो को अपने भाई की निंदा अच्छी नहीं लगती पर उसे तुरन्त ही अहसास होता है कि ताई निहाली ने सच ही तो कहा है। वह जीतू के खाट के नीचे पड़े खून से लिथड़े कपड़ों के टूकड़ों को समेट झाड़ू लगा देती है। ज्ञानो बड़ों की इज्जत करना जानती है। चाची के अकेले होने पर कई दफे आकर उसकी खबर लेती है। प्रीतो की ताई निहाली और चाची से लड़ाई होती है, तो ज्ञानो प्रीतो से चुप रहने के लिए कहती है। चाची जब सूत कातती है तो उसके उलझे धागे सुलझाने में उसकी मदद करती है। काली जब घर बनवाने की बात करता है तो सब बधाइयाँ देते हैं। ज्ञानो भी चाची को सलाह देती है – "चौबारे के बाहर चारों ओर लाल रंग करवाना। फिर वह दूर से बिल्कुल चौधरी हरनाम सिंह के चौबारे की तरह दिखाई देगा।" (27)

कुदाल चलाते हुए काली के भरे हुए, मजबूत, सुडौल, शरीर को ज्ञानो ध्यान से देखती है। वह काली की ओर आकर्षित हो जाती है। काली के

---

27 *धरती धन न अपना*, पृ. सं. 41

कुदाल की हर चोट के साथ एक उपला थापने की कोशिश करती है। उपले थापने के बाद काली के घर चली जाती है। वह चाची की बातों से बेपरवाह कुदाल चलाते हुए काली को देखती है। काली जब चाची से पानी माँगता है तो ज्ञानो उसे अपने घर से लस्सी लाकर देती है। लस्सी पीते हुए काली के चौड़े–चकले सीने की ओर ध्यान से देखती है।

पक्का मकान बनवाने के लिए काली कुछ पैसे लेने के लिए छज्जूशाह के पास जाता है। शाह उसे पैसे तो नहीं देता, वह काली के चाचा सिद्धू को दिए पैसे काली से सूद समेत वापस ले लेता है। काली पैसे के लिए जमानत में अपने मकान की जमीन रेहन रखने के लिए कहता है तो शाह उसे बताता है कि वह जमीन तुम्हारी नहीं है। वह शामलाल (गाँव के जमींदारों की साझी जमीन) जमीन है। काली निराश हो घर लौटता है। वह चाची से शहर जाने की बात करता है। काली कहता है कि पूरे गाँव में शोर हो गया है कि काली पक्का मकान बनवा रहा है। अब यदि कच्चा–पक्का बनाया तो लोग तरह–तरह की बातें करेंगे।

ज्ञानो उसका उत्साहवर्द्धन करती है। वह काली को समझाते हुए कहती है कि 'इसमें शर्म की क्या बात है। अपना मकान कोई जैसे जी चाहे बनाये। '... अगर आदमी गाँव वालों की मर्जी पर चलने लगे तो एक दिन में ही या तो उसे गाँव छोड़ना पड़ेगा या छलाँग मारनी पड़ेगी।' [28] ज्ञानो की इन बातों का काली पर जादू–सा असर होता है। वह भी ज्ञानो की ओर आकर्षित होने लगता है।

---

28 *धरती धन न अपना,* पृ. सं. 57

ज्ञानो साँवले रंग की तीखे नैन–नक्श वाली आकर्षक किशोरी है। गाँव के जमींदारों के लड़के उसके शारीरिक आकर्षण से प्रभावित हैं। वे उसके साथ छेड़खानी करते हैं, उसे अपनी जाल में फाँसने की कोशिश करते हैं। पर ज्ञानो चरित्रवान लड़की है। वह किसी लोभ या भय के कारण किसी के वश में नहीं आती। वह छेड़खानी करने वालों की बेइज्जती कर देती है। चाहे वह हरनाम सिंह का भतीजा हरदेव हो या चौधरी मुंशी का बेटा। वह किसी से भी नहीं डरती। इसके विपरीत उसका भाई मंगू चौधरियों के तलवे सहलाता है और अपनी बहन ज्ञानो के संबंध में भी उनसे अश्लील बातें सुनकर उनका विरोध नहीं कर पाता।

बहिष्कार के समय भी ज्ञानो काली का साथ देती है। काली अपना सारा अनाज प्रीतो को दे देता है। ज्ञानो काली को रोटियाँ छुपा कर दे जाती है। इसके लिए उसे तरह–तरह के व्यंग्य सुनने पड़ते हैं। वह किसी की बातों से न तो घबराती है और न ही आहत हो प्रेम–मार्ग से विचलित होती है। वह लोगों की बातों को नजरअन्दाज कर देती है। वह काली से प्यार करती है फिर भी उसके द्वारा किया गया अपमान नहीं भूल पाती। वह काली से कहती है – "तू समझता है कि जब तेरा जी चाहे तो मुझे बुला ले और जब दिल चाहे मुझे दुत्कार दे।" (29)

मंगू जहाँ फिसादी व झगड़ालू स्वभाव का है, ज्ञानो संवेदनशील व दूसरों के दुःखों से दुःखी होने वाली लड़की है। ज्ञानो नहीं चाहती कि मंगू और काली में कोई अनबन हो, पर मंगू ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देता है कि

---

29 *धरती धन न अपना,* पृ. सं. 262

काली को उसे सबक सिखाना आवश्यक लगने लगता है। मंगू के उकसाने पर निक्कू काली से लड़ाई करता है। निक्कू की कराहें, प्रीतो का विलाप, चाची की बेहोशी और काली की घबराहट देख ज्ञानो की आँखों में आँसू आ जाते हैं और अपने भाई मंगू के लिए उसके मुँह से बद्दुआ निकलती है। जब नत्थासिंह कहता है कि निक्कू का सिर फोड़ने के जुर्म में काली को उम्र कैद हो सकती है। उसे जेल में लोहे की चक्की पीसनी पड़ेगी तो ज्ञानो घबरा जाती है। वह ऊँची आवाज में कहती है कि निक्कू का सिर काली ने नहीं, मंगू ने फोड़ा है।

ज्ञानो संवेदनशील लड़की है। लोगों की बातचीत से उसे पता चलता है कि काली को अत्यधिक चोट आई है। काली के यह कहने पर भी कि उसे मामूली चोट आई है, ज्ञानो को विश्वास नहीं होता है। रात को सबके सो जाने पर वह अपनी तसल्ली के लिए काली के पास आती है और उसके शरीर को टटोल कर देखती है कि उसे कहाँ–कहाँ चोट लगी है। काली उसका स्पर्श पाकर अपना नियंत्रण खो देता है और ज्ञानो के साथ शारीरिक संबंध स्थापित करता है। ज्ञानो भी काली को प्यार करती है अतः अत्यधिक विरोध भी नहीं कर पाती। बाद में उसे अपनी गलती का अहसास होता है। वह घर आकर खूब रोती है। एक बार शारीरिक संबंध बन जाने के बाद अपने इस संबंध की नियति को वह पहचान जाती है। बाद में भी काली से वह जब कभी मिलती है, काली को शारीरिक संबंध नहीं बनाने देती। वह काली से कहती है – "तू क्या समझता है इस काम से मेरी इज्जत बढ़ती है।" [30] उसे अपनी एक भूल की कीमत अपनी जान देकर चुकानी पड़ती है। काली और ज्ञानो एक–दूसरे को प्यार करते हैं। उनमें शारीरिक आकर्षण होना या शारीरिक संबंध बनना स्वाभाविक प्रतीत होता

---

30 *धरती धन न अपना,* पृ. सं. 264

है। काली के प्रति ज्ञानो का लगाव ही उसे काली से मिलने से नहीं रोक पाता। वह लाख पाबंदियों के बाद भी उससे मिलने का अवसर निकाल लेती है। दोनों ही अनेक बार एक–दूसरे से न मिलने की संकल्प लेते हैं पर दो–चार दिनों के बाद ही उनके संकल्प टूट जाते हैं।

ज्ञानो साहसी, निडर व स्वाभिमानी है। वह अपने इरादों की पक्की है। शहर वापस जाने के लिए काली पादरी अचिन्तराम से पैसे लेता है। काली को बीच रास्ते से ही पादरी के पैसे लौटा देने के लिए ज्ञानो वापस भेज देती है। उसके गाँव छोड़ने के निर्णय पर दुत्कारते हुए कहती है – "मैं तो समझती थी कि तू जिगरे वाला आदमी है। तू आसानी से दबने वाला नहीं है। तेरे से तो गली के कुत्ते अच्छे हैं जो मारने पर आगे से घूरते तो हैं।" (31)

ज्ञानो में सच बोलने का साहस है। काली उससे मिलने उसके घर आता है। वहाँ ताई निहाली उन्हें देख लेती है। बाबे फत्तू के यह पूछने पर कि "पूतरा पहले तू कह दे कि यह तेरा भाई लगता है।"

काली की ओर संकेत करते हुए ज्ञानो स्पष्ट शब्दों में कहती है – "अगर वह अपनी छाती पर हाथ रखकर कह दे कि वह मुझे अपनी बहन समझता है तो मैं मान लूँगी।" (32) वह शर्म या भय से झूठ नहीं बोलती।

ज्ञानो काली से इतना प्यार करती है कि वह उसके साथ ईसाई बनने के लिए या कहीं भाग जाने के लिए भी तैयार हो जाती है। पादरी काली को तो ईसाई बनाने के लिए तैयार है पर ज्ञानो को नहीं। वह शर्त रखता है कि

---

31 *धरती धन न अपना,* पृ. सं. 209

32 *धरती धन न अपना,* पृ. सं. 276

यदि ज्ञानो के माँ और भाई ईसाई बनेंगे तभी वह ईसाई बन सकती है। यह प्रसंग यशपाल के उपन्यास 'दिव्या' की नायिका दिव्या के जीवन–प्रसंग से कितना मिलता–जुलता है! ज्ञानो की तरह दिव्या भी सामाजिक संस्कार (विवाह) के बिना पृथुसेन का अंश धारण कर लेती है। पृथुसेन के द्वारा अस्वीकृत होने पर उसे दासी का जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होना पड़ता है, क्योंकि दिव्या को पता है कि उसके लिए पितृ–गृह में कोई स्थान नहीं। कुँवारी अवस्था में माँ बनना परिवार के लिए कलंक व लांछना के समान है। दिव्या के परिवार में मोक्षा का गर्भ परिवार के लिए उल्लास का कारण है, पर दिव्या का कौमार्य का गर्भ परिवार के लिए कलंक का कारण। अपने दासी–जीवन की विसंगतियों और विडम्बनाओं से बचने के लिए अपने शिशु के साथ दिव्या बौद्ध–विहार पहुँचती है। वह बौद्ध–धर्म का शरण लेना चाहती है। परन्तु वहाँ उसे बताया जाता है कि 'चेरी धर्म ग्रहण करने के लिए पिता, पति या पुत्र की अनुमति आवश्यक है। धर्म के नियमानुसार अभिभावक की अनुमति के बिना संघ में स्त्री को शरण नहीं दिया जा सकता। दिव्या के कहने पर कि भगवान तथागत ने तो वेश्या अम्बपाली को भी संघ में शरण दी थी, स्थाविर के द्वारा बताया जाता है कि वेश्या स्वतंत्र नारी है।' (33)

ये दोनों ही प्रसंग क्या यह नहीं बताते कि सभी धर्मों में स्त्री के लिए स्थिति एक जैसी है? क्या ये दोनों प्रसंग धर्म के स्त्री विरोधी चरित्र, उसके खोखलेपन, उसमें पुरुष वर्चस्व को इंगित नहीं करते? क्या ये यह नहीं बताते कि पुरुषों का समाज के सभी सत्ता प्रतिष्ठानों पर नियंत्रण है, जिनमें धार्मिक संस्थाएँ भी शामिल हैं? यह कैसा धर्म है जिसमें एक वेश्या को स्वतंत्र रूप से

---

33 यशपाल–दिव्या, लोकभारती प्रकाशन, ईलाहाबाद –1, 2008, पृ. सं. 118–119

निर्णय लेने का अधिकार है पर एक कुलीन या साधारण स्त्री को नहीं ? अब मृत्यु या फिर वेश्या बनने के सिवा एक स्त्री के सामने कोई चारा ही नहीं बचता। इसकी परिणति हम ज्ञानो और दिव्या के प्रसंग में देखते हैं। ज्ञानो की माँ उसे जहर दे देती है। इस तरह उपन्यास में एक सशक्त तेजस्वी दलित स्त्री पात्र की मृत्यु हो जाती है।

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों के कोख पर कब्जा करने के लिए यौन–शुचिता की अवधारणा रखी गई है, जिससे पुरुष अपनी संपत्ति अपनी ही संतान को सौंप सके। इसके लिए आदर्श पतिव्रता नारियों की तरह–तरह की कहानियाँ जनमानस में फैली हुई हैं। ब्राह्मण तथा उच्चवर्गीय हिन्दू समाज में यौन–शुचिता व पविव्रता का कट्टरता से पालन कराया जाता है। दलितों में इसकी थोड़ी–सी छूट दिखायी देती है तो उसमें भी सवर्ण पुरुषों की स्वार्थपूर्ण मानसिकता प्रमुख होती है। यह छूट इसलिए दी गयी है ताकि सवर्ण पुरुष दलित स्त्रियों को अपनी भोग्या बना सकें।

लच्छो और ज्ञानो समवयस्क हैं। लच्छो अपने परिवार का पेट भरने के लिए इच्छा–अनिच्छा से यौन– संबंध स्वीकार करती है। उसकी माँ प्रीतो भी ये बातें जानती है। पर उसे जहर नहीं दिया जाता, क्योंकि उसकी माँ को पता है कि वह पितृसत्तात्मक मूल्यों का उल्लंघन नहीं करेगी, उसे जहाँ और जब शादी के लिए कहा जायेगा वह तैयार हो जाएगी। ज्ञानो कई तरह से समाज के तथाकथित नियमों का उल्लंघन करती है। सबसे पहले तो वह प्रेम करती है, वह भी अपने ही गोत्र और गाँव के लड़के काली से। प्रेम को हमारे समाज में सबसे बड़ा अपराध माना जाता है। 'प्रेम की मारी मुटियार को कोई पसन्द नहीं करता।' ज्ञानो अपनी मर्जी से एक पुरुष से न केवल प्रेम करने का

साहस करती है बल्कि उस पुरुष के समक्ष समर्पण भी करती है। यह पितृसत्ता को मंजूर नहीं।

एक स्त्री को स्वनिर्णय का अधिकार पितृसत्ता नहीं देती, खासकर शादी–विवाह के मामले में। लच्छो के प्रेम और विवाह का निर्णय अभी भी पितृसत्ता के हाथों में है। लच्छो किसी तरह का विद्रोह नहीं कर रही है अपितु वह वही कर रही है जो उसका परिवार उससे करवाना चाहता है, किन्तु ज्ञानो विद्रोह भी करती है। कुँवारा मातृत्व भारतीय समाज में एक अभिशाप की तरह है। ज्ञानो माँ बन जाती है यह परिवार की इज्जत पर सबसे बड़ा हमला है। अतः ज्ञानो को मृत्युदंड प्राप्त होता है। आज भी अधिकतर स्त्रियाँ शिक्षा, नौकरी, जीवनसाथी आदि संबंधी निर्णय स्वयं नहीं लेती। उन्हें अपने अभिभावकों के मर्जी के अनुसार चलना पड़ता है। इसके खिलाफ चलने पर उन्हें पारिवारिक 'सम्मान हत्याओं' (Honour Killings) का निशाना बनाया जाता है।

गर्भ–धारण में ज्ञानो अकेले दोषी नहीं है पर सजा सदा स्त्री को ही मिलती है। पुरुष को सजा मिलती भी है तो मामूली–सी। उपन्यास में काली का पलायन दिखाया गया है। यदि वह दो–तीन महीने बाद भी चाहता तो गाँव आकर रह सकता था। परन्तु लड़की के लिए सारे रास्ते बंद हो जाते हैं। समाज में सम्मानजनक जीवन बिताना उसके लिए मुश्किल हो जाता है। यदि गर्भ गिर जाए या लड़की जल्द से जल्द कहीं ब्याह दी जाए तो ठीक है, अन्यथा उसकी जान ले ली जाती है। कई बार लड़कियाँ घर वालों को गर्भ की बात बताये बिना आत्महत्या कर लेती है, क्योंकि उनमें भी समाज के तथाकथित नियमों के विपरीत खड़े होने का साहस नहीं होता।

सवर्ण और दलित स्त्रियों के चरित्रों के उपरोक्त विश्लेषण के फलस्वरूप परिवार एवं समाज में उनकी स्थिति, पितृसत्ता के द्वारा उनके शोषण

का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। धीरे–धीरे स्त्रियों ने अपने शोषण को पहचाना। पितृसत्ता के द्वारा निर्धारित नियमों का तर्कपूर्ण ढ़ंग से विश्लेषण करने पर उन्हें निराशा हाथ लगी और उन्होंने अपनी अस्मिता के लिए आवाज उठाई। भारत के मनीषियों का ध्यान भी यहाँ की स्त्रियों की निम्न स्थिति पर गया और उनकी दशा सुधारने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रयास किए गए।

तृतीय अध्याय

समकालीन स्त्री–विमर्श और 'धरती धन न अपना'

तृतीय अध्याय

समकालीन स्त्री–विमर्श और 'धरती धन न अपना'

सदियों से पितृसत्ता के दुश्चक्र में फँसी नारी के दमन, शोषण एवं उत्पीड़न, उससे मुक्त होने की छटपटाहट एवं उसके प्रति विद्रोह की अभिव्यक्ति ही 'स्त्री–विमर्श' है। 'स्त्री–विमर्श' स्त्रियों की पराधीनता के कारक पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था का विश्लेषण करता है तथा विवाह–संस्था, धर्म, न्याय और मीडिया के दोहरे चरित्र को उजागर करता है। यह स्त्रियों को परिधि से केन्द्र में लाता है, उसे समाज में स्वायत्त जीव की तरह जीने का अधिकार देता है। 'स्त्री–विमर्श' अस्मिता का आन्दोलन है।

1.पश्चिम में नारीवादी आन्दोलनः उद्‌भव और विकास

स्त्रियों ने अपनी दासता, शोषण और उत्पीड़न के खिलाफ जब से प्रतिरोध जताना शुरू किया, तभी से स्त्री मुक्ति का आरंभ माना जाता है। पाश्चात्य जगत में महिला आन्दोलन की शुरूआत 19वीं सदी और 20वीं सदी के आरंभिक दशक से माना जाता है। (1) भारत में स्त्री–मुक्ति का स्वर बौद्धकालीन थेरी गाथाओं के मुक्ति–गीतों में देखा जाता है। (2)

पाश्चात्य जगत में स्त्री–मुक्ति आन्दोलन को विभिन्न कालों अथवा लहरों में बाँटा गया है। 'पहली लहर' उन्नीसवीं सदी और बीसवीं सदी के आरंभिक दशक तक मानी जाती है तो 'दूसरी लहर' 1960 के दशक से लेकर

---

1. आर्य, साधना, और अन्य –(सम्पा.) *नारीवादी राजनीति संघर्ष और मुद्दे*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली –7, तीसरी आवृत्ति 2010, पृ. सं. 105

2. राजे, सुमन – *हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास*, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली–3, तीसरा संस्करण 2006, पृ. सं. 22–23

अब तक जारी है।[3] इससे पूर्व भी स्त्रियाँ अपनी अस्मिता एवं अधिकारों को लेकर सचेत रही होंगी, अपने शोषण तथा उत्पीड़न का प्रतिरोध की होंगी पर उसका कोई लिखित इतिहास नहीं मिलता। इससे पूर्व की स्त्रियों की राजनैतिक सक्रियता की सार्वजनिक या लंबी परंपरा की जानकारी नहीं मिलती।

फ्रांसीसी क्रांति के समय में 1789 में जब ओलिंप ड गूज़ नामक महिला ने क्रांति में स्त्रियों की उपेक्षा पर सवाल उठाया तो उसे मृत्युदंड की सजा सुनाई गई। [4] ब्रिटेन में मेरी वोल्स्टोनक्राफ्ट की पुस्तक 'स्त्री अधिकारों का औचित्य–साधन' 1792 में तथा 1873 में जॉन स्टुअर्ट मिल की पुस्तक 'स्त्रियों की पराधीनता' छपी। [5] 1848 में अमरीका की कुछ महिलाओं ने अपने अधिकारों का घोषणा–पत्र जारी किया। 19 जुलाई 1848 को 'सेनिका फाल्स सम्मेलन' में स्त्रियों के सामाजिक व नागरिक अधिकारों के संबंध में विचार–विमर्श किया गया। अमरीका में स्त्रीवादी आन्दोलन के 'प्रथम लहर' की शुरूआत यहीं से मानी जाती है। [6]

1911 में चार्लटने पर्किन्स गिलमैन ने अपनी पुस्तक 'द मैन मेड वर्ल्ड' में पुरुषों की दासता से औरतों की मुक्ति की बात की। [7]

लम्बे राजनीतिक संघर्षों व प्रयासों के फलस्वरूप 1919 में अमरीका में महिलाओं को मताधिकार देने के लिए संविधान में संशोधन किया गया।

---

3. *नारीवादी राजनीति संघर्ष और मुद्दे*, पृ. सं. 105

4. *वही* पृ. सं. 106

5. *वही* पृ. सं. वही

6. इस्सर, देवेन्द्र –*स्त्री मुक्ति के प्रश्न* , संवाद प्रकाशन, मेरठ, उ. प्र., पहला संस्करण 2009, पृ. सं.29–30

7. *वही* पृ. सं. 30

ब्रिटेन में महिलाओं को मताधिकार 1927 में, फ्रांस में 1944 में तथा स्विटजरलैंड में 1959 में मिला। [8] स्त्रियों को मताधिकार मिलना स्त्री आन्दोलन के प्रथम चरण की महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जा सकती है।

फ्रांस की बुद्धिजीवी सीमोन द बोउवार की महत्वपूर्ण पुस्तक 'द सेकेण्ड सेक्स' 1948 में छपी। इसका अंग्रेजी अनुवाद 1953 में आया। मुख्य धारा के बुद्धिजीवियों के द्वारा इस पुस्तक का मजाक उड़ाया गया। नारीवादी आन्दोलन के अगले चरण के लिए यह पुस्तक बहुत ही प्रेरणाप्रद साबित हुई। [9]

1960 के दशक में महिला आन्दोलन की 'दूसरी लहर' का आरंभ माना जाता है। 'दूसरी लहर' के उभरने के अनेक कारण हैं। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् यूरोप एवं उत्तरी अमरीका में होने वाली तीव्र आर्थिक विकास के कारण श्रम की माँग बढ़ी। परिणामस्वरूप महिलाएँ रोजगार की ओर उन्मुख हुई। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् उन्हें गृहिणी के पारंपरिक रूप में वापस जाने की माँग की जाने लगी। रोजगार से जुड़ने के कारण जहाँ महिलाओं में आत्मबोध की भावना जगी, वहीं कार्यक्षेत्र में महिलाओं के प्रति भेदभावपूर्ण रवैये से उनमें असंतोष की भावना बढ़ी। गृहिणियों में भी अपने सुविधापूर्ण, प्रतिष्ठित पर सतही व संकरी जीवन से असंतोष जगा। प्रमुख नारीवादी बैट्टी फ्रीडन ने मध्यमवर्गीय महिलाओं के जीवन के एकाकीपन को अपनी पुस्तक 'द फेमिनिन मिस्टीक' में अभिव्यक्त किया है। यह पुस्तक 1963 में छपी। [10] नारीवाद के 'दूसरी लहर' के उद्भव में

---

8. *नारीवादी राजनीति संघर्ष और मुद्दे*, पृ. सं. 107

9. *नारीवादी राजनीति संघर्ष और मुद्दे*, पृ. सं. 107

10. *स्त्री मुक्ति के प्रश्न* , पृ. सं. 32

इस पुस्तक का भी महत्वपूर्ण योगदान है। जो महत्व 'प्रथम लहर' में सीमोन की पुस्तक 'द सेकेण्ड सेक्स' का था, वही महत्व 'दूसरी लहर' में बैट्टी फ्रीडन की पुस्तक 'द फेमिनिन मिस्टीक' का था। फ्रीडन की इस पुस्तक को नारी–मुक्ति का घोषणा–पत्र करार दिया गया। अमरीका के दक्षिणी राज्यों में अश्वेतों पर होने वाले अत्याचारों के विरोध में 1950 के दशक में नागरिक अधिकार आन्दोलन का जन्म हुआ। (11) इस आन्दोलन ने श्वेत लोगों को भी प्रभावित किया। हालांकि, आन्दोलन से जुड़ी श्वेत व अश्वेत महिलाओं में मनमुटाव बढ़ा। परन्तु यह भी सत्य है कि श्वेत महिलाओं को इस आन्दोलन से प्रेरणा भी मिली।

1960 के दशक में पूरे विश्व में पारंपरिक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व्यवस्था के विरोध में अनेक आन्दोलन उग्र रूप में उभरे। इन आन्दोलनों की सबसे बड़ी विशेषता थी इनका विश्वव्यापी स्वरूप। छात्र आन्दोलन, श्रमिक आन्दोलन, नव वाम आन्दोलन आदि आन्दोलनों में महिलाओं ने भी व्यापक रूप से भाग लिया। इन आन्दोलनों में पुरुष आन्दोलनकारियों द्वारा स्त्री संबंधी मुद्दों को महत्व नहीं दिए जाने, उनकी खुली उपेक्षा व उपहास करने तथा आन्दोलन में महिला आन्दोलनकारियों की अपनी हाशिएकरण से निराशा मिली। मुक्ति–संघर्ष के लिए महिलाओं की अलग आन्दोलन की भावना भी उनमें बढ़ी, जो महिलाओं द्वारा संचालित हो तथा जिससे स्त्री–दमन के मूल कारण पितृसत्तात्मक व्यवस्था से लड़ा जा सके।

मीडिया ने आम जनता के समक्ष महिला आन्दोलन को नकारात्मक रूप में प्रस्तुत किया। लोगों में धारणा पैदा की कि नारीवादी पुरुष विरोधी होती हैं। परन्तु इसके साथ ही महिला आन्दोलन को अन्तर्राष्ट्रीयता की

---

11. *नारीवादी राजनीति संघर्ष और मुद्दे,* पृ. सं. 108

ओर उन्मुख करने का श्रेय भी मीडिया को ही जाता है। मीडिया के कारण ही विभिन्न देशों में होने वाले छोटे–मोटे कार्यक्रमों की खबर अन्य देशों में पहुँची।

1961 में जॉन ऑफ कनेडी के अमरीका के राष्ट्रपति बनने के पश्चात् महिलाओं की स्थिति का अध्ययन करने के लिए आयोग गठित किया गया। किसी भी नारीवादी संगठन के द्वारा इस आयोग के गठन की माँग नहीं की गई थी। इस आयोग की 15 सदस्याएँ भी विभिन्न व्यावसायिक क्षेत्रों की थीं। वे किसी भी नारीवादी आन्दोलन से जुड़ी हुई नहीं थीं। दो वर्षों के पश्चात् अर्थात् 1963 में 'अमरीकी औरतें' नामक 60 पृष्ठों के रिपोर्ट में की गई।[12] इस रिपोर्ट में उन्होंने न केवल महिलाओं के साथ होने वाले भेदभाव व हिंसा के प्रति आश्चर्य प्रकट किया, बल्कि महिलाओं की चिंताओं को भी जायज ठहराया। इस रिपोर्ट में नारी–उत्थान के लिए अनेक सुझाव व सिफारिशें भी प्रस्तुत की गई।

बैट्टी फ्रीडन के सहयोग से 1966 में 'राष्ट्रीय नारी संगठन' (NOW) की स्थापना हुई। [13] इससे नारीवाद का स्वर और भी प्रबल हुआ। 1968 में अटलांटिक सिटी में आयोजित 'मिस अमरीका सौंदर्य प्रतियोगिता' का विरोध सैंकड़ों की संख्या में नारीवादियों ने किया। नारीवादियों का मानना था कि इस तरह की प्रतियोगिताओं में नारी–शरीर का प्रदर्शन पुरुषों की भोग–वृत्ति को बढ़ावा देता है। उन्होंने 'मिस अमरीका' का ताज भेड़ को पहनाकर अपना विरोध जताया। [14] 1968 में ही न्यूयार्क की क्रांतिकारी महिलाओं ने बलात्कार,

---

12. *स्त्री मुक्ति के प्रश्न*, पृ. सं. 32

13. *नारीवादी राजनीति संघर्ष और मुद्दे*, पृ. सं. 116

14. *वही* पृ. सं. वही

यौन–उत्पीड़न आदि मुद्‌दों पर सम्मेलन आयोजित की थी। [15]

1972 में फ्रांस में लगभग दो सौ महिलाओं ने एक आंचलिक अखबार में सार्वजनिक पत्र छपवाया कि 'मैंने गर्भपात करवाया है।' इस पत्र पर सीमोन द बोउवार ने भी हस्ताक्षर किए थे। फ्रांस के बाद जर्मनी में भी ऐसी ही चिठ्ठी छपी, जिसपर वहाँ की प्रमुख नारीवादियों के हस्ताक्षर थे। तत्कालीन समय में गर्भपात को जुर्म माना जाता था। इस तरह महिलाओं ने इस कानून के प्रति विरोध जताया। इस कानून में संशोधन की मांग के लिए अमरीका तथा यूरोप की महिलाएँ भारी संख्या में सड़कों पर उतरीं। इस प्रकार आम महिलाओं में महिला आन्दोलन को प्रसिद्धि मिली। [16]

स्त्री मुक्ति और अस्मिता के इन्हीं प्रयासों में फ्रांस में महिलाओं के प्रतिनिधि मंडल द्वारा 'अज्ञात सैनिक' के स्मारक पर पुष्पांजलि अर्पित करने की घटना भी महत्वपूर्ण है, जिसमें सैनिक के लिए नहीं बल्कि उसकी पत्नी के लिए पुष्पांजलि अर्पित की गई। जुलूस, धरना, प्रदर्शन के लिए व्यापक संख्या में महिलाएँ सड़कों पर उतरीं। कामकाजी महिलाओं ने यौन–हिंसा और उत्पीड़न के खिलाफ जुलूस और नारेबाजी की। 'रात को वापस लो, 'जो व्यक्तिगत है वह राजनीतिक है' आदि नारीवादियों के प्रमुख नारे हैं।

उस समय नारीवाद पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुईं। केट मिलेट की पुस्तक 'सेक्सुअल पॉलिटिक्स' 1970 में प्रकाशित हुई। केट मिलेट ने स्त्री–पुरुष संबंधों की तुलना अमरीका के श्वेत–अश्वेत लोगों के संबंधों से की।

---

15. *स्त्री मुक्ति के प्रश्न* , पृ. सं. 34

16. *नारीवादी राजनीति संघर्ष और मुद्‌दे*, पृ. सं. 113 –114

1970 में ही शुलमिथ फायर स्टोन की 'द डायलेक्टिस ऑफ सेक्स', रॉबिन मार्गन की 'सिस्टरटुड इज पावर फुल' तथा 1971 में जर्मेन ग्रीर की पुस्तक 'फीमेल यूनिक' छप कर आई। [17] संयुक्त राष्ट्र के द्वारा 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष तथा 1975–85 को महिला दशक घोषित किया गया। [18] घरेलू कार्यों के लिए वेतन, रोजगार तथा शिक्षा के समान अवसर व अधिकार, यौनिक–उत्पीड़न, घरेलू हिंसा, गर्भ नियंत्रण एवं गर्भपात का अधिकार इत्यादि महिला आन्दोलन के प्रमुख मुद्दे थे।

विभिन्न देश की महिलाओं की भिन्न–भिन्न प्रकार की समस्याएँ एवं परिस्थितियाँ थी। एक ही देश की अलग–अलग वर्ग की महिलाओं की समस्याओं और परिस्थितियों में फर्क था। महिला आन्दोलन के विभिन्न धाराओं में बँटने का भी यही प्रमुख कारण है। परन्तु सबका उद्देश्य लैंगिक भेद व लैंगिक–पूर्वाग्रह का विरोध ही था। विभिन्न धाराओं में बँटने के कारण आन्दोलन का प्रभाव व्यापक ही हुआ। साठ और सत्तर के दशक में पश्चिम में नारीवादी आन्दोलन की तीन प्रमुख धाराएँ थीं – उदारवादी, उग्रवादी और समाजवादी या मार्क्सवादी।

उदारवादी नारीवाद उदारवादी राजनीति के स्वतंत्रता, समानता व अधिकार आदि शब्दावली से ही अभिप्रेरित था। बैट्टी फ्रीडन तथा उनके द्वारा स्थापित 'नेशनल आरगेनाइजेशन ऑफ विमेन' भी उदारवादी नारीवादी धारा के थे। उदारवादी नारीवाद ने सार्वजनिक क्षेत्र में सरकार पर दबाव डालकर बदलाव लाने पर बल दिया। यह सरकार की नीतियों को प्रभावित करने में असरदार

---

17. *स्त्री मुक्ति के प्रश्न* , पृ. सं. 35

18. *नारीवादी राजनीति संघर्ष और मुद्दे*, पृ. सं. 268

रही पर सत्ता पक्ष से इसका जुड़ाव भी रहा। इस धारा में नारी मुक्ति को व्यक्तिगत समस्या का रूप दिया गया और उसे हल करने का अधिकार सामूहिक संगठन को नहीं दिया गया। अन्य नारीवादियों के अनुसार उदारवादी नारीवाद स्त्री–दमन के मूल कारणों को नहीं पहचान पाए हैं तथा इनका कार्यक्षेत्र श्वेत मध्यवर्ग तक ही सीमित है।

नारीवाद का सबसे प्रचलित धारा उग्रवादी नारीवाद है। 1960के दशक में यह काफी प्रभावशाली था। उग्रवादी रवैये के कारण मीडिया के द्वारा इसका उपहास उड़ाया गया तथा आम महिलाओं में यह लोकप्रिय नहीं बन पाया। इस धारा की नारीवादियों में वैचारिक मतभेद सबसे अधिक था। इसमें महिलाओं के व्यक्तिगत समस्याओं को महत्व दिया जाता था। यह इस धारा की प्रमुख विशेषता थी। इनकी मान्यता थी कि स्त्री दमन के मूल कारणों को जानने के लिए उनके निजी समस्याओं को जानना आवश्यक है। इसके लिए उन्होंने 'चेतना जागृति समूह' का निर्माण किया। [19] महिलाएँ अपने विचार, अपनी व्यक्तिगत समस्याओं , अपने अनुभवों को इस समूह में बेझिझक अभिव्यक्त कर सकती थीं। अन्य राजनीतिक संगठनों में व्यक्तिगत अनुभवों को महत्व नहीं दिया जाता था। 'चेतना जागृति समूह' को माओवाद सांस्कृतिक क्रांति के लोकप्रिय 'स्पीक बिटरनेस' सभाओं से प्रभावित माना जाता है। [20] हिंसा गर्भ–नियंत्रण, गर्भपात, यौनिकता, शिक्षा व औरतों के लिए बच्चों की देखभाल के लिए पूर्ण दिवसीय शिशु केन्द्र आदि रेडिकल नारीवादियों के प्रमुख उद्देश्य थे।

समाजवादी और मार्क्सवादी नारीवादियों पर वामपंथी विचारधारा

---

19. *नारीवादी राजनीति संघर्ष और मुद्दे,* पृ. सं. 117

20. *वही* पृ. सं. वही

का प्रभाव है। 1889 में एंगेल्स की रचना 'परिवार व्यक्तिगत संपत्ति और राज की उत्पत्ति में निजी संपत्ति तथा स्त्री–उत्पीड़न के परस्पर संबंधों को स्पष्ट किया गया था। इसका प्रभाव मार्क्सवादी नारीवादियों पर पड़ा। हालांकि इन नारीवादियों में वामपंथी राजनीतिक विचारधारा से कुछ मुद्दों पर मतभेद भी है। "... इन नारीवादियों ने पितृसत्ता और जेंडर के विश्लेषण को पूँजीवाद, साम्राज्यवाद तथा समाजवाद की समझ से जोड़ने में सर्वाधिक योगदान दिया।" (21)

1969 के स्टोनवॉल विद्रोह के साथ ही 'गे लिबरेशन' आन्दोलन की शुरूआत हुई। इसके साथ ही लेस्बियन नारीवाद का भी जन्म हुआ।[22] लेस्बियन नारीवादियों के अनुसार पुरुष स्त्रियों का शोषक है। अतः स्त्री–स्त्री संबंध स्थापित कर ही पुरुषों का बहिष्कार किया जा सकता है। उनके वर्चस्व को नकारा जा सकता है। यह अप्राकृतिक नहीं है। अन्य संस्कारों की तरह स्त्री–पुरुष यौनिकता भी प्रकृति–सुलभ न होकर समाज–निर्मित है।

नारीवादियों की विभिन्न धाराओं में व्याप्त मतभेद 1980 तक स्पष्ट होने लगे। सभी धाराओं के द्वारा भूमंडलीय बहनचारे की बात की जाती थी। पर आन्दोलन श्वेत मध्यमवर्गीय, समलैंगिक, विषमलैंगिक कामनावाली महिलाओं, अश्वेत महिलाओं तथा प्रवासी महिलाओं के बीच बँटकर रह गया। ब्लैक महिलाएँ श्वेत महिलाओं से क्षुब्ध थीं। श्वेत महिलाओं ने ब्लैक महिलाओं के जीवन से संबंधित कई मुद्दों पर उनकी राय नहीं माँगी। समलैंगिक कामनावाली स्त्रियों का मानना था कि विषमलैंगिक कामना वाली स्त्रियाँ उन्हें बीमार, तुच्छ व निकृष्ट

---

21. *नारीवादी राजनीति संघर्ष और मुद्दे,* पृ. सं. 113 –114

22.. *स्त्री मुक्ति के प्रश्न* , पृ. सं. 35

समझती हैं। ब्लैक महिलाओं की स्थिति सर्वाधिक दुविधापूर्ण थी। उन्हें लिंगवाद और नस्लवाद के दोहरे शोषण के खिलाफ लड़ना पड़ रहा था। उनके आन्दोलन में श्वेत महिलाओं का पूर्वाग्रह व नस्लवाद सबसे बड़ी बाधा थी। ब्लैक लेखिका एलिस वॉकर ने अपने आन्दोलन का नाम दिया 'वूमनिस्ट' ताकि फेमिनिस्ट से उसका अलगाव स्पष्ट हो जाये। हालांकि श्वेत महिलाओं में भी कुछ लोगों ने आन्दोलन में व्याप्त नस्लवाद को समझा और इसे दूर करने की आवश्यकता बताई।

फिलिस शलेफली तथा मिज डेक्टर ने उस समय में नारीवाद के खिलाफ आवाज उठाई जब नारीवाद का बोलबाला था। फिलिस शलेफली ने अपनी पुस्तक 'ए चायस नॉट इन इको' (1964) , तथा 'द पॉवर ऑफ पॉजिटिव वूमन' (1977) में नारीवाद में व्याप्त अतिवाद पर प्रहार किया। शलेफली ने नारीवाद को साम्यवादियों की साजिश माना। उसने कहा कि स्त्रीवाद अमरीकी समाज को ध्वस्त कर देगा। इसके खतरे को पहचानना आवश्यक है। [23] मिज डेक्टर ने अपनी पुस्तक 'न्यू चेस्टिटी' में नारी आन्दोलन को संशय की निगाह से देखते हुए इस पर कटु प्रहार किया था। वह नारीवाद को कुछ पथभ्रष्ट स्त्रियों का षड्यंत्र मानती थी। 28 मार्च 1974 को विलेड स्टेट हाल में अपने व्याख्यान में मिज डेक्टर ने कहा था कि " ... इस आन्दोलन ने उन्हें घोर पुरुष विरोधी ही नहीं घोर शिशु–विरोधी भी बना दिया है।" [24] नारीवादी आन्दोलन में विभिन्न धाराओं तथा उनकी वैचारिक भिन्नता की वजह से आन्दोलन अपने मूल उद्देश्य से भटक गया। उसमें कई महत्वपूर्ण मुद्दे उपेक्षित रह गए। देहमुक्ति और

---

23. *स्त्री मुक्ति के प्रश्न*, पृ. सं. 51

24. *वही,* पृ. सं. 132–34

स्वच्छंदता, पुरुषों के प्रति घृणा का प्रचार आदि अतिरंजनाओं से यह आन्दोलन भर गया। कई मुद्दों पर सभी धाराओं में गहरा मतभेद है। इन मतभेदों, पूँजीवादी ताकतों तथा दक्षिणपंथी राजनीति ने आन्दोलन को कमजोर बनाने में भूमिका निभाई। समकालीन के बदले 'उतर नारीवाद' का भी प्रयोग होने लगा। इसके बाद भी आन्दोलन की उपलब्धियों, इसके सकारात्मक परिणामों को नकारा नहीं जा सकता। नारीवादी आन्दोलनों के जरिए स्त्री की स्वतंत्रता, अस्मिता और अस्तित्व से जुड़े प्रश्नों का हल ढूँढ़ने का प्रयास किया गया। इससे स्त्रियों के सोच को नई दिशा मिली। वे समझने लगी कि परतंत्रता उनकी नियति नहीं बल्कि समाज द्वारा थोपी गई है।

2. भारत में नारीवादी आन्दोलन : उद्भव और विकास

भारतीय परिप्रेक्ष्य में माना जाता है कि नारीवादी आन्दोलन यहाँ की उपज न होकर पश्चिम से प्रभावित है पर वास्तविकता यह नहीं है। भारत में भी मलिा आन्दोलन पुराना इतिहास है। पश्चिम में इसके मुद्दे और कार्यशैली भिन्न है। भारत में महिला आन्दोलन को तीन लहरों में बाँटा गया है। 'पहली लहर' के अन्तर्गत बाल–विवाह, सती प्रथा का विरोध तथा विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा आदि उन्नीसवीं सदी में होने वाले सुधारवादी आन्दोलनों को रखा गया है। आन्दोलन की 'दूसरी लहर' स्वतंत्रता–संग्राम तथा उस समय के स्त्री–संबंधी अनेक मुद्दे – शिक्षा, मताधिकार, पर्दा, व्यक्तिगत अधिकार आदि से जुड़े हुए हैं। 1947 के पश्चात् देश की आजादी के बाद महिला आन्दोलन की 'तीसरी लहर' की शुरूआत मानी जाती है।[25]

राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, केशवचन्द्र सेन,

---

25. *नारीवादी राजनीति संघर्ष और मुद्दे*, पृ. सं. 263

दयानन्द सरस्वती आदि मनीषियों ने स्त्री–सुधारों के लिए अनेक संगठन बनाए– जैसे प्रार्थना समाज, आर्य समाज, ब्रह्म समाज आदि। इन महापुरुषों के द्वारा स्त्री कल्याण के लिए अनेक प्रयास किए गए। इन सभी ने स्त्री–शिक्षा पर विशेष बल दिया। इस समय सती–प्रथा, बाल–विवाह जैसी कुप्रथाओं की निंदा की गई तथा विधवा विवाह का समर्थन किया गया।

स्वाधीनता–संग्राम के समय अनेक राष्ट्रीय स्तर के महिला संगठनों जैसे – 'ऑल इंडिया विमेंस कांफरेंस' 'नेशनल फेडरेशन ऑफ इंडियन विमिन', 'विमेंस इंडिया एसोसिएशन' आदि बने।[26] आजादी के पश्चात् इन नारीवादी संगठनों की गति मंद पड़ गई। इन्होंने समाज सेवा व कल्याण के क्षेत्र में काम शुरू किया। शरणार्थियों के पुनर्वास, उनकी बुनियादी जरूरतें, शिक्षा, रोजगार पर अपना ध्यान केन्द्रित किया।

उस समय बंगाल में 'तैभागा' तथा आंध्र प्रदेश में 'तेलंगाना आन्दोलन' विकसित हुए। दोनों ही आन्दोलनों में कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में जमींदारों और पूँजीवादी ताकतों के खिलाफ किसानों के द्वारा लड़ाई लड़ी गई। इन आन्दालनों में किसान औरतों ने भारी संख्या में भाग लिया। इस आन्दोलन में अनेक आक्रामक महिला कार्यकर्ता उभर कर सामने आई, जैसे – कामरेड स्वराज्यम, चकली, इलाम्मा, जमालुन्निसा बेगम आदि। तेलंगााना 'आंध्र महिला सभा', 'आंध्र युवती मंडल', 'महिला संघम' संगठनों ने जमींदारों के शोषण के खिलाफ तथा सैन्य बल से लड़ाइयाँ लड़ने के साथ लिंगीय समानता, घरेलू हिंसा, बाल विवाह, बहु विवाह, व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किए।

---

26. *नारीवादी राजनीति संघर्ष और मुद्दे*, पृ. सं. 263

'तेलंगाना आन्दोलन' 1951 तक चला जबकि 'तैभागा' 1948 में ही कमजोर पड़ गया। दोनों आन्दोलनों को सरकार ने सैन्य शक्ति के बल पर खत्म किया तथा इसके नेताओं को जेल भेजा गया, उनकी हत्या कराई गई। सी.पी.आई. को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया जिससे आन्दोलन भूमिगत हो गया और कम्युनिस्टों ने गुरिल्ला युद्ध की रणनीति अपनाई। महिलाओं को छापामार दस्ते में शामिल होने की आज्ञा नहीं दी गई। औरतों ने बाहर से इसे सहयोग दिया। शामिल होने वाली औरतों का परिवार ने बहिष्कार कर दिया तथा उन पर आरोप लगाया कि उन्होंने अपना स्त्रीत्व खो दिया है।[27]

गाँधीवादी प्रभावस्वरूप 1950 में 'भूदान–आन्दोलन' चला। महिलाओं ने गाँव–गाँव जाकर इसके लिए लोगों को प्रेरित किया। कोसानी (अल्मोड़ा) के 'कस्तूरबा महिला उत्थान मंडल' के कुमायूं की शिक्षिकाएँ और छात्राओं ने इसमें सक्रिय रूप से भाग लिया। इस आन्दोलन में सरला बहन प्रमुख थीं।[28] नारीवादियों तथा नारीवादी संगठनों के प्रयासों से कानूनी क्षेत्र में भी कई संशोधन हुए हैं। भारतीय संविधान में लिंग के आधार पर समानता दी गई है। 1949 'हिन्दू कोड बिल' प्रस्तावित हुआ। इसमें कई सुधार हुआ परन्तु डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सहित कई कांग्रेसी इसके विरोधी थे। 1955–56में कई टुकड़ों में बँट कर चार अलग–अलग अधिनियमों के रूप में पारित हुआ। नारीवादियों ने इस पर विरोध किया पर सरकार ने समेकित हिन्दू कोड की माँग पर कोई अन्य कार्रवाई नहीं की।[29]

---

27. कुमार, राधा – *स्त्री संघर्ष का इतिहास*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली –2, आवृत्ति 2011, पृ. सं. 203

28. *नारीवादी राजनीति संघर्ष और मुद्दे*, पृ. सं. 264

29. *स्त्री संघर्ष का इतिहास*, पृ. सं. 202

1950 के दशक में ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिए अनेक सरकारी योजनाएँ शुरू की गईं। ए.आई.डब्ल्यू.सी. और एन. एफ.आई.डब्ल्यू ग्रामीण और शहरी क्षेत्र में कार्य करते रहे।[30] परन्तु उनके कार्यक्रमों का दायरा काफी सीमित था। विकास के लिए बड़ी–बड़ी जल विद्युत और ताप विद्युत परियोजनाओं तथा भारी उद्योगों के लगाए जाने से किसान बड़ी संख्या में विस्थापित हो गए।[31] अपनी मुआवजे की रकम का जिन्होंने सदुपयोग किया वे कुछ लोग तो संभल पाए, अधिकतर पैसे खर्च करने के बाद मजदूर बनने को विवश हो गए। 1960 के दशक में नक्सलवाद ने जोर पकड़ा।[32] देश के तमाम कोने में आन्दोलन फैल गया। मार्क्सवादी एवं लेनिनवादी विचारधारा से प्रभावित चारू मजूमदार और उनके साथियों के नेतृत्व में उभरा यह आन्दोलन किसानों का विद्रोह था। 'लीला किसान, के. अजिता, यू. विंध्या आदि इसकी सक्रिय कार्यकर्ता रहीं।' [33]

1970 के दशक में नारीवादी आन्दोलन नए तेवर में उभरा। 70 के दशक में कुमायूं और गढ़वाल के कई इलाकों में 'चिपको आन्दोलन' शुरू हुआ। यह आन्दोलन 'रेणी' नामक गाँव से शुरू हुआ। गौरा देवी के नेतृत्व में वहाँ की पहाड़ी महिलाओं ने जंगल में पेड़ों की कटाई का विरोध किया। दशोली ग्राम स्वराज्य संघ' (चमोली) और 'पर्वतीय नवजीवन मंडल (टेहरी गढ़वाल) ने इसे आन्दोलन का स्वरूप देने में मदद की। यह आन्दोलन धीरे–धीरे फैल गया। इसी

---

30. *नारीवादी राजनीति संघर्ष और मुद्दे*, पृ. सं. 265

31. *वही*, पृ. सं. वही

32. *नारीवादी राजनीति संघर्ष और मुद्दे*, पृ. सं. 265

33. यादव, राजेन्द्र एवं अन्य – *पितृसत्ता के नए रूप* , राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली –2, पहला संस्करण 2010, पृ. सं. 151– 172

के आधार पर जंगलों के रक्षार्थ कर्नाटक में 'एपिको आन्दोलन' चला। टिहरी बाँध के निर्माण के खिलाफ भी वहाँ की स्थानीय महिलाओं ने हजारों की संख्या में विरोध प्रदर्शन किया।[34]

1970 के दशक में महाराष्ट्र, हरियाणा, आंध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, तमिलनाडु आदि देश के कई भागों में शराबखोरी के खिलाफ आवाज उठाई गई। महिलाओं की मान्यता थी कि शराब पीने से जहाँ घर की आर्थिक स्थिति खराब होती है वहीं घरेलू हिंसा को भी बढ़ावा मिलता है। महिलाओं ने शराब बनाने वाले बर्तनों को तोड़ा–फोड़ा तथा शराबी पतियों की सार्वजनिक भर्त्सना की।

मंहगाई के खिलाफ आन्दोलन भी 1970 के दशक के आरंभ में ही छिड़ा। 'मूल्यवृद्धि–विरोधी आन्दोलन' का सबसे तीव्र स्वर महाराष्ट्र में उभरा। इसमें भाग लेने वाली अग्रणी थी – समाजवादी पार्टी की अहिल्या रांगेकर। 20–20 हजार महिलाओं ने जुलूस निकाली। खाली घी और तेल के डब्बे तथा बेलन लेकर महिलाओं ने प्रदर्शन किया। गुजरात में यह 'नवनिर्माण आन्दोलन' के नाम से उभरा। यहाँ के कार्यकर्ता भूख हड़ताल पर भी बैठे, नुक्कड़ नाटक खेले गए तथा प्रभातफेरियाँ निकाली गईं। 1972 में शाहदा में श्रमिक संगठन की स्थापना हुई। उसी समय जयप्रकाश नारायण ने बिहार में 'सम्पूर्ण क्रांति' का स्वर छेड़ा। उत्तर प्रदेश तथा बिहार के छात्र बड़ी संख्या में इसमें शामिल हुए। 'छात्र युवा संघर्ष वाहिनी' का गठन हुआ। इसके प्रमुख हैं – मणिमाला, नीलम, किरण, कनक और मानसी। गाँव वालों को सामन्तशाही व्यवस्था से मुक्ति की प्रेरणा दी गई। जमीन के पुनर्वितरण के समय महिलाओं ने प्रस्ताव रखा कि

---

34. *नारीवादी राजनीति संघर्ष और मुद्दे,* पृ. सं. 266–67

जमीन पुरुष और स्त्री दोनों के संयुक्त नामों से होनी चाहिए।

1975 में देश में आपातकाल की घोषणा से अनेक आन्दोलनों को दबा दिया गया। नए संगठन और नए समूह भी बने। संयुक्त राष्ट्रसंघ के द्वारा 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष तथा 1975–85 को महिला दशक घोषित होने से महिला मुद्दों पर ध्यानाकृष्ट हुआ। भारत में महिलाओं के दर्जे पर एक रिर्पोट तैयार की गई। रिर्पोट के अनुसार महिलाओं के लगातार घटते अनुपात की जानकारी मिली। इन सब से लोगों ने भारत में महिला आन्दोलन की आवश्यकता महसूस की।

1974 में कुछ कम्युनिस्ट महिलाओं ने हैदराबाद में 'प्रगतिशील महिला संगठन' बनाया। उनका यह कदम वामपंथी पार्टियों में व्याप्त पुरुष सत्तात्मक विचारधारा से मुक्ति के लिए था।(35)

महाराष्ट्र में 1975 में दलित व देवदासियों के उत्थान के लिए 'पुरोगामी महिला संगठन' दलित स्त्रियों के लिए 'स्त्री मुक्ति संगठन' तथा 'महिला समता सैनिक दल' बने। इस तरह भारत में स्वायत्त महिला संगठनों की शुरूआत हुई। इनकी सदस्य सिर्फ महिलाएँ थीं। इन संस्थाओं में प्रमुख हैं – 'फोरम अगेंस्ट रेप', 'फोरम अगेंस्ट अपरेशन ऑफ विमीन' (मुम्बई), 'सहेली' (दिल्ली) , 'अस्मिता' (हैदराबाद), 'विमोचना' (बैंगलोर), 'पेनुरम्मा इयाक्कम' (तमिलनाडु), 'महिला मंच' (उत्तर प्रदेश) आदि। इन मंचों पर महिलाएँ खुलकर अपनी समस्याएँ और विचार रख पाईं। इन समूहों ने समय–समय पर राष्ट्रस्तरीय

---

35. *स्त्री संघर्ष का इतिहास*, पृ. सं. 217

सम्मेलन किए हैं। सम्मेलन में हजारों की संख्या में भाग लेकर महिलाओं ने नए मुद्दे व आयाम जोड़कर इसका दायरा बढ़ाया है।[36]

1970 और 1980 के बीच राजनीतिक पार्टी आधारित महिला संगठन भी बने। 1977 में प्रमिला दंडवते तथा सुमन कृष्णकान्त के नेतृत्व में समाजवादी महिलाओं ने 'महिला दक्षता समिति' गठित की। 'नेशनल फेडरेशन ऑफ इंडियन विमेन' पहले अविभाजित कम्युनिस्ट पार्टी का अंग था, बाद में सी.पी.आई का हिस्सा बना। 1978 में बना 'ऑल इंडिया डिमोक्रेटिक विमेन्स एसोसिएशन' मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़ा हुआ है। 'महिला कांग्रेस' कांग्रेस पार्टी से तथा 'दुर्गावाहिनी' भारतीय जनता पार्टी से जुड़े हुए हैं। राजनीतिक पार्टियों में ऊँचे दर्जे और पदों पर कम ही महिलाएँ हैं। लैंगिक भेदभाव सभी पार्टियों में मौजूद है।[37]

सन् 1972 में इला भट्ट ने गुजरात में 'सेल्फ–एम्प्लायड वीमेन्स एसोसिएशन्स' (सेवा की स्थापना की) 'सेवा' असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं के लिए बनाया गया था। 'सेवा' ने इन महिलाओं के लिए बचत बैंकों की भी स्थापना की। 'छत्तीसगढ़ महिला मुक्ति–मोर्चा' और 'धाड़ क्षेत्र महिला मोर्चा' आदि महिला संगठन भी बने हैं।[38]

1970–80–90 के दशक में कई महिला संगठनों ने विशेषकर

---

36. *नारीवादी राजनीति संघर्ष और मुद्दे,* पृ. सं. 269

37. *नारीवादी राजनीति संघर्ष और मुद्दे,* पृ. सं. 270

38. *वही,* पृ. सं. 271

वामपंथी संगठनों से जुड़े समूहों ने कामकाजी महिलाओं के मुद्दों को उठाया। इनके प्रमुख मुद्दे हैं – समान वेतन, प्रसूति की छुट्टी, बच्चों के लिए शिशु देखभाल केन्द्र आदि।

उपरोक्त विवेचन के पश्चात् यह निष्कर्ष सामने आता है कि 'धरती धन न अपना' के प्रकाशन वर्ष 1972 तक नारीवादी आन्दोलन में शिक्षा, समानता, समान वेतन, प्रसूति की छुट्टी, घरेलू हिंसा का विरोध, शराबबंदी, मूल्य वृद्धि का विरोध आदि मुख्य मुद्दे थे। दहेज–उत्पीड़न, यौन–उत्पीड़न व बलात्कार आदि उसके बाद के समय के मुद्दे हैं। इससे पूर्व इन मुददों पर सार्वजनिक बहसों से लोग कतराते थे।

3. स्त्री विमर्श और 'धरती धन न अपना'

जैसा कि पहले कहा गया है भारत में स्त्री–अस्मिता के प्रश्न को बौद्ध–भिक्षुओं की थेरी–गाथाओं से जोड़ा जाता है। भिक्षुणियों ने अपने वैवाहिक और पारिवारिक जीवन की विसंगतियों से त्राण पाने के लिए बौद्ध–धर्म का शरण लिया और अपने स्वतंत्र जीवन के सुखमय अहसास को गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त किया ––

"अहो! मैं मुक्त नारी। मेरी मुक्ति कितनी धन्य है!

पहले मैं मूसल लेकर धान कूटा करती थी,

आज उससे मुक्त हुई

मेरी दरिद्रावस्था के वे छोटे–छोटे बर्तन

जिनके बीच मैं मैली–कुचैली बैठा करती थी,

आज उनसे मुक्त हुई

और मेरा निर्लज्ज पति मुझे उस छाते से भी तुच्छ समझता था।

जिन्हें वह अपनी जीविका के लिए बनाया करता था।

अब, उस जीवन की आसक्तियों और मलों को मैंने छोड़ दिया।"[39]

भक्तिकालीन मीरा और अक्कामहादेवी ने सामंती समाज की रूढ़ियों की परवाह न कर स्वतंत्र व अपनी रूचि का जीवन बिताया। मीरा ने राजसत्ता, लोकसत्ता, पुरुष सत्ता तथा कुल की मर्यादा को चुनौती देते हुए आने वाली पीढ़ी की स्त्रियों के समक्ष स्वतंत्र चेतना का आदर्श प्रस्तुत किया।

आधुनिक काल के साहित्यकारों ने भी अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्री शिक्षा, विधवा–विवाह का समर्थन किया (अनेक अन्तर्विरोधों के साथ) तथा सती प्रथा, बाल विवाह, बहुविवाह आदि का विरोध किया। तत्कालीन समय की बुद्धिजीवी महिलाओं ने अपने देश की स्त्रियों का दासतापूर्ण जीवन के प्रति आक्रोश दर्शाया। उन्होंने समाज के समक्ष अपने विचारों को पुस्तकों के माध्यम से प्रस्तुत किया। इन पुस्तकों में स्त्रियों की पराधीनता के मूल कारण, स्वरूप एवं उनसे मुक्ति की राहों पर विचार व्यक्त किए गए हैं। इस कड़ी में 'अज्ञात हिन्दू औरत' की पुस्तक 'सीमंतनी उपदेश' महत्वपूर्ण है। यह पुस्तक 1882 में लुधियाने के मुंशी माधोस्वरूप के धर्म सहायक प्रेस से छपी थी।[40] इसमें लेखिका ने अपने क्रांतिकारी विचारों को तो व्यक्त किया परन्तु समाज के समक्ष अपनी पहचान व्यक्त करने का साहस नहीं कर पाई। तत्कालीन समय में पुरुष –

---

39. *हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास*, पृ. सं. 23

40. तलवार, वीरभारत – *रस्साकशी*, सारांश प्रकाशन, नई दिल्ली– 91, पहला पेपर बैक संस्करण 2006 पृ. सं. 197

सत्तात्मक समाज की इतनी तीखी, निर्मम व कड़ी आलोचना आश्चर्य का विषय लगता है। लेखिका ने औरतों की आभूषणप्रियता सफाई रहित जीवनशैली, सुहाग के लिए पहनने वाले आभूषणों तथा रीति–रिवाजों की खिल्ली उड़ाई है। उन्होंने स्त्रियों की यौनेच्छा पर खुलकर बात की है। अपनी स्थिति में सुधार लाने के लिए किसी समाज–सुधारक की बाट जोहने की नहीं बल्कि स्वयं कटिबद्ध होने की बात की है।

विधवाओं के कष्टपूर्ण जीवन व त्रासद अंत का भी मार्मिक वर्णन है। लेखिका प्रश्न उठाती है कि जब पुरुष दूसरी शादी कर सकता है तो औरत क्यों नहीं कर सकती? इस पुस्तक में आधुनिक नारीवादी चेतना के अंकुर दिखाई देते हैं।

इसी वर्ष अर्थात 1882 में ही पुणे के श्री शिवाजी छापेखाने से महाराष्ट्र की क्रांतिकारी महिला ताराबाई शिंदे की पुस्तक 'स्त्री–पुरुष तुलना' छपी।[41] ताराबाई शिंदे तत्कालीन समय की दूसरी महत्वपूर्ण स्त्री थी। इस पुस्तक में लेखिका ने पुरुष समाज सुधारकों की आलोचना की है। 'सीमंतनी उपदेश' की लेखिका की तरह ताराबाई शिन्दे ने भी स्त्री–धर्म (पतिव्रत–धर्म) की आलोचना की है। उन्होंने पुरुषों के पूर्वाग्रहपूर्ण, वर्चस्ववादी मानसिकता के साथ ही समाज और संस्कृति के पुरुष वादी नजरिए का भी पर्दाफाश किया है।

पंडिता रमाबाई ने 'हिन्दू स्त्री का जीवन' [42] में उच्चवर्गीय विशेषतः ब्राह्मण स्त्रियों की सामाजिक स्थिति से अवगत कराने के साथ मनुवादी संस्कृति

---

41. *रस्साकशी,* पृ. सं. 211

42. पंडिता रमाबाई –*हिन्दू स्त्री का जीवन,* (अनु. शम्भू जोशी) संवाद प्रकाशन, मेरठ, उ. प्र.,पहला संस्करण. 2006,

के खोखलेपन को उजागर किया है। उन्होंने इस पुस्तक में विधवा, निःसंतान स्त्रियों की समस्याओं को, उनके शोषण के कारणों पर बात की है।

बंग महिला, मल्लिका, सुभद्रा कुमारी चौहान, महादेवी वर्मा आदि स्त्री लेखिकाओं ने एक तरफ साम्राज्यवादी और सामन्तवादी जकड़नों के खिलाफ आवाज उठाई तो दूसरी ओर स्त्री प्रश्न पर भी अपने विचार व्यक्त किये। महादेवी वर्मा की 'श्रृंखला की कड़ियाँ' इस कड़ी में महत्वपूर्ण रचना मानी जा सकती है।

नवम्बर 1934 में 'चाँद' का 'नारी आन्दोलन' अंक तथा 1935 में 'विदुषी' अंक निकला। इस अंक का संपादन महादेवी वर्मा ने किया। तीस के दशक में छपे 'चाँद' में महादेवी के सम्पादकीय लेखों का संकलन 'श्रृंखला की कड़ियाँ' नाम से 1942 में पुस्तक के रूप में छपा।[43] इसमें महादेवी ने विवाह और परिवार संस्था को चुनौती दी है तथा स्त्री शोषण का मूल कारण विवाह को माना है। महादेवी ने स्त्री–पुरुष के बीच जैविक भिन्नता को स्वीकार किया है। उनकी मान्यता है कि जैविक रूप से पुरुषों से भिन्न होने का यह मतलब नहीं कि स्त्रियों को दोयम दर्जे का नागरिक माना जाय। लेखिका के अनुसार भारतीय स्त्रियों की पराधीनता व उनकी दुर्दशा में मुख्य भूमिका धर्म और धार्मिक ग्रंथों की है। स्त्री को अबला होने का अहसास कदम–कदम पर कराया जाता है। स्त्रियों का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। पुरुष के साथ संबंध से ही उनकी पहचान निर्धारित होती है। महादेवी वर्मा लिखती हैं कि समस्या का समाधान ज्ञान पर निर्भर है। परन्तु भारतीय सभ्यता और संस्कृति में स्त्रियों का पालन –पोषण इस तरह से किया जाता है कि उन्हें अपनी पराधीनता का

---

43. पांडेय, मैनेजर –संकलित निबंध, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, दूसरी आवृति 2011, पृ. सं. 231–32

अहसास ही नहीं होता। नैतिकता व कर्तव्य भावना से जोड़कर पुरुषों के हर तरह का अत्याचार एवं शोषण झेल लेती हैं। महादेवी वर्मा स्त्रियों की गुलामी का मूल कारण आर्थिक रूप से निर्भर होना मानती हैं। लेखिका स्त्रियों की मुक्ति की राहों की खोज की चिन्ता भी व्यक्त करती हैं। उनकी मान्यता है कि 'कृषक और श्रमजीवी स्त्रियों की मुक्ति के बिना स्त्री मुक्ति की बात अधूरी व बेमानी है।'[44] लेखिका स्त्रियों में ऐसी दृष्टि का विकास चाहती हैं जो न पुरुष दृष्टि के पीछे चले और न ही पुरुष दृष्टि बनने की कोशिश करे।

प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, निराला आदि साहित्यकारों ने स्त्री प्रश्नों को अपनी रचनाओं में उठाया है। प्रेमचन्द ने अनमेल विवाह, दहेज, आभूषण–प्रियता आदि सामाजिक समस्याओं के साथ नारी जीवन की विडम्बनाओं और विसंगतियों को भी उभारा है। अनमेल विवाह के कारण 'निर्मला' उपन्यास में निर्मला जैसी गुणवान लड़की का जीवन नरक बनते दिखाया गया है तो 'सेवासदन' में दहेज के कारण सुमन वेश्या बनने के लिए विवश हो जाती है। 'गबन' में स्त्रियों की आभूषणप्रियता और उससे उत्पन्न समस्या को अभिव्यक्ति मिली है। 'वरदान', 'प्रतिज्ञा' और 'निर्मला' में विधवा की दारुण सामाजिक स्थिति को दर्शाया है तो 'प्रेमाश्रम' में पारिवारिक विघटन प्रमुख हैं। प्रेमचन्द के यहाँ स्त्री पारंपरिक भारतीय नारी है जो त्याग, सेवा, दया, करूणा, ममता की देवी है। प्रेमचन्द ने 'गोदान' में लिखा है —"... स्त्री पुरुष से उतना ही श्रेष्ठ है जितना प्रकाश अंधेरे से।" [45]

---

44. वर्मा, महादेवी – *श्रृंखला की कड़ियाँ,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद –1, दूसरा पेपरबैक संस्करण 2010 पृ.सं. 25,

45. प्रेमचंद – *गोदान,* राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली 2, आवृति 2007, पृ. सं. 167

'दिल्ली का दलाल', 'शराबी' आदि के माध्यम से पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने स्त्री जीवन की विसंगतियों का बीभत्स चित्र प्रस्तुत किया है। स्त्रियों के क्रय–विक्रय के साथ ही अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, आर्थिक विपन्नता के कारण वेश्यावृत्ति अपनाने के लिए मजबूर लड़कियों की समस्याओं का मार्मिक चित्र इन उपन्यासों में उभारा गया है। वेश्या के चरित्र के निर्मल व सकारात्मक पक्षों की अभिव्यक्ति भी हुई है।

"प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं के अन्तर्गत नारी जीवन की विभिन्न समस्याओं को विशुद्ध अभिव्यक्ति मिली।" (46) जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी के कथा साहित्य में स्त्रियों के अन्तर्मन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मिलता है। जैनेन्द्र के नारी पात्र मध्यवर्गीय समाज की सीधी–सादी, घरेलू होने पर भी अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक हैं। परम्पराओं व रूढ़ियों का बोझ ढ़ोना इन्हें पसन्द नहीं। 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी', 'सुखदा', 'अनन्तर', 'अनामस्वामी' की नायिकाएँ वैयक्तिक स्वतंत्रता की समर्थक नारियाँ हैं। समाज के द्वारा निर्धारित नैतिकता के मानदण्डों से विद्रोह करती हैं और वे वही करती हैं जो इन्हें उचित लगता है। पुरुष पात्रों की अपेक्षा उनका चरित्र अधिक विकसित व जीवन्त है। निराला के उपन्यास 'अलका' की नायिका शोभा, अज्ञेय के 'शेखर : एक जीवनी' की शशि खुले मन की स्त्रियाँ हैं।

जयशंकर प्रसाद की रचनाओं में स्त्री पात्र प्रायः परम्परावादी भद्रवर्गीय पुरुषों द्वारा शोषित दिखाई गई हैं। उनका 'कंकाल' उपन्यास इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। इसके साथ ही वेश्याओं की धन लोलुपता तथा विधवा

---

46. मठपाल, सावित्री – *जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी,* साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली 6, प्रकाशन वर्ष 1991, पृ. सं. 11

राजो की अतृप्त कामभावना को भी 'तितली' उपन्यास में लेखक ने अभिव्यक्त किया है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों की स्त्रियाँ भी राजनीतिक गतिविधियों में शामिल होती दिखाई गई हैं पर यशपाल के यहाँ स्त्रियाँ अलग रूप में उपस्थित होती हैं। प्रेमचन्द के स्त्री पात्र गाँधीवादी विचारों से प्रेरित हैं तो यशपाल के स्त्री पात्र क्रांतिकारी भावनाओं से। 'दिव्या' की नायिका समाज की परवाह किए बिना कुँआरा मातृत्व स्वीकार करती है। वह अपने जीवन की विसंगतियों का डटकर सामना करती है। 'दादा कॉमरेड' की शैल तथा 'देशद्रोही' की चन्दा समाज–निर्मित परन्तु मानव विकास में बाधक नियमों का विरोध करती हैं। शैल कामविषयक नैतिक वर्जनाओं को स्वीकार नहीं करती। स्त्री के शरीर का एक ही पुरुष के उपभोग की पारंपरिक अवधारणा को खारिज करती है। 'समाज में व्याप्त स्त्रियों के सतीत्व व पवित्रता की अवधारणा को यशपाल पुरुषों की साजिश मानते हैं।' (47)

नारी जीवन का सबसे क्रूरतम रूप है उसका वेश्या होना। वेश्यावृत्ति समाज का कोढ़ है। हालांकि प्राचीन काल में वेश्या स्त्री सबसे स्वतंत्र होती थी तथा सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करती थी पर उस जीवन में भी अलग तरह की त्रासदी होती थी। इस दृष्टि से भगवतीचरण वर्मा का 'चित्रलेखा' तथा आचार्य चतुरसेन शास्त्री का 'वैशाली की नगरवधू' महत्वपूर्ण उपन्यास हैं। 'सिंह सेनापति' उपन्यास में राहुल सांकृत्यायन ने ऐसे गणराज्य की कल्पना की है जहाँ स्त्रियों को भी पुरुषों के समान सारे अधिकार मिले हैं।

---

47. राय, गोपाल – *हिन्दी उपन्यास का इतिहास*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2, पहली आवृति 2009, पृ. सं. 184

अपने क्रांतिकारी चेतना के कारण आधुनिक नारी जाति धर्म की रूढ़ियों को नहीं मानती। प्रेम में जाति–धर्म की बेड़ियों को तोड़ डालना चाहती है। वृन्दावनलाल वर्मा के 'गढ़कुण्डार' व 'मृगनयनी', कौशिक के 'भिखारिणी', अंचल के 'नई इमारत' में इन प्रश्नों उठाया गया है।

भारतीय समाज में विधवा व गरीब औरतों को प्रताड़ित करने के लिए तरह–तरह के हथकंडे अपनाये जाते हैं। उसे 'डायन' करार दिया जाता है। इस समस्या को फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने 'मैला आँचल' में गणेश की नानी के माध्यम से उठाया है। मन्दिरों–मठों पर रहने वाली स्त्रियों का मठाधीश किस प्रकार यौन–शोषण करते हैं उसका जीवन्त उदाहरण इस उपन्यास की 'लछमी' है।[48]

1946 में प्रकाशित हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास में नारी के दैवीय रूप के दर्शन होते हैं। इसमें द्विवेदी जी ने भट्टिनी एवं निपुणिका के माध्यम से उदात्त प्रेम को अभिव्यक्ति दी है। इसमें नारी मन के सुकोमल और संवेदनशील पक्षों को लेखक ने उभारा है। पुरुष वर्चस्ववादी समाज में स्त्री चाहे किसी भी वर्ग की हो उसका शोषण होता है, इस कटु सत्य को भी इस उपन्यास में व्यक्त किया है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में द्विवेदीजी ने लिखा है ''स्त्री के दुःख इतने गंभीर होते हैं कि उसके शब्द उसका दशमांश भी नहीं बता सकते। सहानुभूति के द्वारा ही उसकी मर्मवेदना का किंचित आभास पाया जा सकता है।'' [49] द्विवेदीजी के उपन्यासों के स्त्री पात्रों के संबंध में नामवर सिंह की मान्यता है कि ''द्विवेदीजी के सभी उपन्यासों के

---

48. रेणु, फणीश्वरनाथ –*मैला आँचल,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2 ,पाँचवा पुनर्मुद्रण 1999, पृ. सं. 25–26, 146–47

49. द्विवेदी, हजारी प्रसाद – *बाणभट्ट की आत्मकथा,* राजकमल पेपरबैक्स, नई दि. 2, सं. 2008, पृ. सं. 194

मूल में स्त्री, स्त्री की वेदना, उसका स्वाभिमान और गरिमा विद्यमान है। यहाँ तक कि स्त्री का उद्धार भी स्वयं स्त्री करती है – पुरुष उसका निमित्त मात्र होता है।" (50)

इस काल के प्रायः सभी उपन्यासकारों ने औरत के लिए समाज में निर्धारित नैतिक संहिता को अपने–अपने ढंग से चुनौती दी है। गोपाल राय के शब्दों में –"इनमें से जैनेन्द्र की चुनौती संवेदनात्मक स्तर पर प्रखर किन्तु दिशाहीन, अज्ञेय और हजारी प्रसाद द्विवेदी की चुनौती संवेदनात्मक स्तर पर प्रखर होने के साथ–साथ सकारात्मक और यशपाल तथा राहुल सांकृत्यायन की चुनौती मुखर, उग्र और झकझोरने वाली है।"(51)

बिहार के मिथिलांचल के समाज में व्याप्त सामाजिक बुराइयों – अनमेल विवाह, बहु विवाह, विधवा समस्या तथा इसके बीच नारकीय जीवन बिताने को अभिशप्त नारियों की करुण कहानी को नार्गाजुन ने अपने उपन्यासों में व्यक्त किया है। 'बलचनमा', 'रतिनाथ की चाची', 'नई पौध', 'जमनिया का बाबा', 'उग्रतारा' इनके महत्वपूर्ण उपन्यास हैं जिसमें स्त्री–जीवन के विविध पक्षों को अभिव्यक्ति मिली है।

ऊब, संत्रास, घुटन, तनाव से पूर्ण विखंडित आधुनिक नारी को मोहन राकेश के उपन्यासों की नायिका के रूप में देख सकते हैं। लेखक ने अपनी रचनाओं में आधुनिक नारी के जीवन की विडम्बनाओं का वास्तविक व सजीव चित्रण किया है। 'रूकोगी नहीं राधिका' में उषा प्रियंवदा ने भी आधुनिक नारी की जटिल मानसिकता, भटकाव, पीड़ा और विद्रोह का अंकन किया है।

---

50. सिंह, नामवर – *सम्मुख,* राजकमल प्रकाशन, नई दि.–2, पहला संस्करण 2012, पृ. सं. 195

51. *हिन्दी उपन्यास का इतिहास,* पृ. सं. 194

राधिका के जीवन में अनेक अवसर आते हैं जहाँ आमतौर पर स्त्रियाँ समझौता कर लेती हैं पर राधिका ऐसा नहीं करती। वह पूरी शक्ति से परिस्थितियों का सामना करती है। चंद्रकिरण सौनरेक्सा के उपन्यास 'चन्दन चाँदनी' की नायिकाएँ मध्यवर्गीय घुटन भरी जिन्दगी तथा परम्परागत मूल्यों के प्रति विद्रोह करती हैं। हमारे समाज में यौन–शुचिता व कौमार्य को लेकर अनेक पूर्वाग्रह एवं भ्रांतियाँ मौजूद हैं। इन कसौटियों पर खरी नहीं उतरने वाली लड़कियों को तरह –तरह की प्रताड़नाएँ झेलनी- पड़ती है। पुरुष समाज उस स्त्री की विवशता, परिस्थितियाँ या इसके साथ होने वाले हादसे को जानने की कोशिश नहीं करता। यही कारण है कि लड़कियाँ अपने साथ हुए बलात्कार को छुपा लेती हैं। ममता कालिया ने अपने उपन्यास 'बेघर' में यही दिखाया है कि कौमार्य संबंधी भ्रांत धारणाओं के कारण कई बार स्त्री–पुरुष दोनों की जिन्दगी नरक बन जाती है।

युद्ध, विभाजन और दंगों के समय स्त्रियाँ ही सर्वाधिक पीड़ित होती हैं, क्योंकि उनके साथ शुचिता का प्रश्न जुड़ा होता है। एक समुदाय का पुरुष वर्ग दूसरे समुदाय की स्त्रियों के साथ बलात्कार कर उस समुदाय को उसकी औकात बताना चाहता है। 'झूठा सच', 'आधा गाँव', 'तमस' आदि उपन्यासों में यह सच्चाई अभिव्यक्त हुई है।

'आपका बंटी' में मन्नू भंडारी ने स्त्री जीवन को एक अलग ही रूप में उपस्थित किया है। पति से तलाक लेकर दोबारा जिन्दगी शुरू करके भी शकुन सुखी जिन्दगी नहीं बिता पाती। एक तरफ उसे पहले पति से उत्पन्न बेटे बंटी के प्रति अपनी जिम्मेदारियों का अहसास होता है तो दूसरी तरफ नये पति और उसकी बेटी के प्रति कर्तव्य भावना की। वह मातृत्व व पत्नीत्व के द्वंद्व के बीच तनावपूर्ण जिन्दगी बिताने को अभिशप्त हो जाती है।

कथा साहित्य में क्रांतिकारी उपन्यासों के साथ कृष्णा सोबती का आगमन होता है। 1967 में 'मित्रो मरजानी' तथा 1972 में 'सूरजमुखी अंधेरे के' प्रकाशित हुए। इनकी नायिकाएँ अपने समय से काफी आगे की प्रतीत होती हैं। मध्यवर्गीय नैतिकता, सामाजिक व नैतिक वर्जनाओं को ठुकराने वाली, मुँहफट और निडर मित्रो अपने परिवार के लिए तो आश्चर्य का विषय है ही, पाठक के लिए भी आश्चर्य का विषय है। वह अपनी यौनेच्छाओं को खुलकर अभिव्यक्त करती है। मित्रो स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करती है कि उसका सीधा-सादा पति उसे यौन संतुष्टि नहीं दे पाता।[52] इस उपन्यास में लेखिका ने यह भी दिखाया है कि संतान न होने की पूरी जिम्मेदारी औरतों को दी जाती है, पुरुष में कमी नहीं ढूंढ़ा जाता। 'मित्रो मरजानी' में स्त्री की छवि भिन्न रूप में प्रस्तुत हुई है। "मित्रो जैसे व्यक्ति समाज में थे, उन्हें साहित्य में नहीं लाया गया था — हिन्दी कहानी में नहीं लाया गया था।" [53]

'धरती धन न अपना' में अभिव्यक्त गाँव घोड़ेवाहा तथा वहाँ की 'चमादड़ी' में भारतीय ब्राह्मणवादी पितृसत्तात्मक समाज की तमाम रूढ़ियाँ मौजूद हैं। गाँव में छुआछूत का बोलबाला है। जाट-चौधरियों के लिए 'चमादड़ी' के स्त्री-पुरुष अन्न पैदा करते हैं। उनकी खेतों में जी-तोड़ मेहनत करते हैं। उनकी मदद के बिना चौधरी अकेले खेती नहीं कर सकते। फिर भी 'चमादड़ी' के लोग बासी व सूखी रोटियों पर गुजर-बसर करने के लिए विवश हैं।

ब्राह्मणवादी समाज में दलितों के साथ छुआछूत सिर्फ खान-पान

---

52. सोबती, कृष्णा – *मित्रो मरजानी,* राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली 2, दूसरी आवृति 2011, पृ. सं. 20

53. त्रिपाठी, विश्वनाथ – *कुछ कहानियाँ : कुछ विचार,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2, पहला संस्करण 1998, पृ. सं. 77

तक ही सीमित रहता है। दलित स्त्रियों के साथ यौन संबंध स्थापित करते समय सवर्ण पुरुषों को उनके अछूत होने का अहसास नहीं होता। 'गोदान' का मातादीन सिलिया को अपनी रखैल बनाकर रखता है। सिलिया उसके बच्चे की माँ बन जाती है पर मातादीन अपनी रोटी उससे नहीं बनवाता।(54) ऐसा ही दोहरा चरित्र 'धरती धन न अपना' के पंडित सन्तराम का भी है। एक तरफ वह भक्ति में लीन रहने का स्वांग करता है तो दूसरी ओर 'चमादड़ी' की स्त्रियों को अपनी हवस का शिकार बनाना चाहता है। वह दलित स्त्रियों को लालच देता है। बग्गे की माँ रक्खिए से कहता है – "रक्खिए, तू मेरा काम कर दे मैं तुम्हें नया सूट ले दूँगा और साथ पैसे भी दूँगा।" (55)

सन्तराम के पाखण्ड की पोल खोलते हुए प्रसिन्नी सबको बताती है कि"बड़ा कायाँ आदमी है। इसकी छूत–छात पानी व रोटी तक ही है। ... एक बार उसके हाथ में दूध की गड़वी थी। मेरा जी चाहा कि दूध मिल जाये तो चाय बनाकर पियूँ। मैंने जान–बूझकर उसे छू दिया। उसने मुझे बहुत गालियाँ दीं। मैं चुपचाप खड़ी सब–कुछ सुनती रही। इस उमीद पर कि वह दूध फेंकने लगेगा तो मिन्नत करके कहूँगी कि मुझे दे दो। लेकिन उसने दूध की गड़वी मन्दिर के दरवाजे पर रख दी और अन्दर से घास का तिनका लाकर उसमें डाल दिया और दूध उठाकर घर चला गया।" प्रसिन्नी फिर सब को बताती है कि "वह घास के तिनके से हर चीज शुद्ध कर लेता है। तिनके से शुद्ध न हो तो मन्त्र फूँककर शुद्ध कर लेता है।" (56)

---

54. *गोदान,* पृ. सं. 184

55.. चन्द्र, जगदीश – *धरती धन न अपना,* राजकमल पेपरबैक्स, न.दि. 2, पहली आवृति 2009, पृ. सं. 211

56. *वही,* पृ. सं. 212

प्रभा खेतान के अनुसार — 'सवर्ण हिन्दू मानस (मूलतः ब्राह्मणवाद) शुद्धता के प्रति ज्यादा आग्रह रखता है। ... दलित स्त्री तो सवर्ण की नजर में विशेष अंग–भर है, यौनिकता का प्रतीक है।' (57)

भारतीय समाज में स्त्रियों को लेकर तरह–तरह की अश्लील गालियाँ प्रचलित हैं। लड़ाई मर्दों में होती है और गालियाँ उनके घर की औरतों को सुननी पड़ती है। 'धरती धन न अपना' के जाट इसी मानसिकता के हैं। वे बात–बात पर अपमान सूचक गालियाँ देते हैं। चमादड़ी के पुरुष भी आपस में ऐसी ही अश्लील गालियों का प्रयोग करते हैं।

सदियों से सताये दलित स्त्री–पुरुष अपमान सहने के इतने अभ्यस्त हो गए हैं कि उन्हें कुछ भी बुरा नहीं लगता। गालियाँ सुनकर वे हँस पड़ते हैं। अपनी स्थिति के प्रति विद्रोह तथा चौधरियों के अत्याचारों के प्रति आक्रोश सिर्फ ज्ञानो और काली में ही दिखाई देता है।

दलितों और स्त्रियों की दुर्दशा का मूल कारण जमींदारों पर उनकी आर्थिक निर्भरता है। जमींदार उन्हें मानव मात्र की गरिमा से भी वंचित रखना चाहते हैं। क्रोधित होने पर तो गालियाँ देते ही हैं सामान्य बातचीत में भी तथाकथित चमारनों के लिए असम्मानसूचक भाषा का प्रयोग करते हैं। दलितों के प्रति चौधरियों का ऐसा व्यवहार घृणास्पद तो है ही, स्त्रियों को सबसे निकृष्ट समझने की उनकी मनोवृत्ति भी उजागर होती है। इसका उदाहरण बाढ़ के बाद बाँध में मिट्टी भरते समय लेखक ने दिया है। चौधरी बूटासिंह अमरू से कहता है – "चमारने घरों में बैठीं अपने नेफों से जुएँ निकाल रही होंगी। उन्हें भी बुला

---

57. खेतान, प्रभा – *उपनिवेश में स्त्री,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2, तीसरी आवृति 2010, पृ. सं. 146

लो। वे टोकरियों में मिट्टी भरकर फेंकती रहेंगी।" (58)

सबसे दुखद बात यह है कि बूटासिंह की ऐसी बातें सुनकर 'चमादड़ी' के पुरुषों को गुस्सा नहीं आता। उल्टे वे अपनी स्त्रियों को काम मिल जाने से खुश होते हैं। वे यह नहीं समझ पाते कि शोषक वर्ग उनसे ही नहीं उनकी औरतों से भी बेगारी करवाना चाहता है। औरतें चाहे खाली ही क्यों न बैठी रहें चौधरियों को उनसे मुफ्त श्रम लेने का कोई अधिकार नहीं। उपन्यास में अनेक स्थलों पर जमींदार के लड़के 'चमादड़ी' की लड़कियों पर फब्तियाँ कसते तथा छेड़खानी करते हुए दिखाए गए हैं।

स्त्री अस्मिता की भावना स्त्री को स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार व शक्ति प्रदान करती है परन्तु पितृसत्ता स्त्री को इसकी अनुमति नहीं देती क्योंकि पितृसत्ता जानती है कि यदि स्त्रियों में अपनी अस्मिता की चेतना आ जायेगी तो उसका साम्राज्य छिन्न–भिन्न हो जायेगा। पितृसत्ता में पुरुषों का पालन–पोषण भी इस तरह से होता है कि उनमें स्त्रियों से श्रेष्ठ होने का भाव आ जाता है। स्त्रियों के प्रति सहिष्णु तथा आदर का भाव रखने वाले पुरुषों का मजाक उड़ाया जाता है। उपन्यास में वर्णित गाँव में पुरुष वर्चस्ववादी विचारधारा ही व्याप्त है। सत्ता के केन्द्र में पुरुष है। हर प्रकार के निर्णय पुरुष ही लेते हैं। बाँध काटा जाय या नहीं, काटा जाय तो कहाँ से, बलि दी जाय या नहीं, एक दूसरे का बहिष्कार किया जाय या नहीं आदि निर्णय लेते समय वे अपने वर्ग की बुजुर्ग औरतों का भी विचार नहीं पूछते। इसका मुख्य कारण है आर्थिक और सामाजिक स्तर पर पुरुषों का आधिपत्य होना।

---

58. *धरती धन न अपना,* पृ. सं. 229

पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता स्त्री पराधीनता का प्रमुख कारण है, पर एकमात्र कारण नहीं। आर्थिक रूप से स्वावलंबी स्त्रियों को भी पति, परिवार तथा समाज की ज्यादतियाँ सहनी पड़ती है। 'धरती धन न अपना' की स्त्रियाँ अनपढ़ व गरीब होने के कारण हर प्रकार की हिंसा व शोषण की शिकार होती हैं। उषा प्रियंवदा के उपन्यास 'पचपन खम्भें लाल दीवारें' की सुषमा पढ़ी–लिखी और नौकरीशुदा होकर भी पारिवारिक दायित्वों, सामाजिक नैतिकताओं तथा मानमर्यादाओं के कारण अपने अधिकारियों तथा सहकर्मियों का दुराग्रह झेलती हैं। उसे प्रेमी का परित्याग करना पड़ता है, क्योंकि नैतिकता के तथाकथित ठेकेदारों के अनुसार उसका प्रेम करना कॉलेज की छात्राओं के चारित्रिक पतन का कारण हो सकता है। ज्ञानो को भी जहर इसी भय से दिया जाता है, जिससे अन्य लड़कियाँ प्रेम व समर्पण करने का साहस न कर सकें।

हमारे समाज में शास्त्र निरूपित परंपरागत संस्कार एवं नैतिकताओं के खाँचे में फिट नहीं बैठने वालों को तथाकथित सभ्य व संस्कारवान समाज ऐसा ही सबक सिखाता है। प्रश्न उठता है कि शील और नैतिकता की माँग सिर्फ औरतों से ही क्यों की जाती है? 'धरती धन न अपना' के पुरुष कौन–सा नैतिक आदर्श प्रस्तुत कर रहे हैं अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए। उनका हर प्रकार का बर्ताव क्या इसलिए क्षम्य है कि वे पुरुष हैं ?

दूसरों की जिन्दगी में अनावश्यक हस्तक्षेप करने की आदत जैसे 'धरती धन न अपना' के ग्रामीण समाज में दिखाई देता है, 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' के महानगरीय समाज में भी वही स्थिति देखने को मिलते हैं। ज्ञानो के गर्भवती होने की बात चौधरी मुंशी की पत्नी पूरे गाँव में फैला देती है और चमादड़ी की स्त्रियाँ उसे आते–जाते ध्यान से देखती हैं। लड़के उस पर फब्तियाँ कसते हैं।

परिवार की सम्पत्ति पर केवल पुरुषों का हक होता है। वह अपनी सम्पत्ति का हस्तांतरण अपने बेटों को करता है न कि बेटियों को। इस तरह पीहर और ससुराल कहीं भी गृहस्वामिनी वास्तविक अर्थों में स्वामिनी नहीं होती। वह अपनी मर्जी से कुछ भी नहीं कर सकती। वह वही करती है जो पुरुष निर्धारित करता है। यही कारण है कि लच्छो को सिट्टे ले जाते देख चौधरानी के हाथ–पाँव फूल जाते हैं। वह मुटठी भर अनाज देने का स्वतंत्र निर्णय नहीं ले पाती। जब चौधरियों ने चाहा तथाकथित चमारनों को हवेलियों में आने से रोक दिया जब चाहा आने दिया। चौधरानियों का जैसे कोई अस्तित्व ही नहीं। घर की चारदीवारी के अन्दर भी पुरुषों के बनाये नियम ही चलते हैं।

'पुरुष प्रधान समाज में स्त्री को पति की परस्त्रीगामिता झेलने के लिए विवश होना पड़ता है।' (59) चौधरानियों को अपने पतियों के पराई स्त्रियों से यौन–संबंधों एवं अवैध संतानों की जानकारी है। पर वे कुछ भी नहीं कर पाती। उपन्यास में कहीं भी इसके लिए विरोध का स्वर दिखाई नहीं देता। मेहरून्निसा परवेज के उपन्यास 'उसका घर' में एक पीड़ित स्त्री कहती है — 'औरत तो जूठा खाने की आदी होती है, चाहे खाने के मामले में हो, चाहे शारीरिक संबंध में हो।' (60) 'धरती धन न अपना' की सवर्ण स्त्रियों में अपने अधिकारों के लिए ऐसी कोई चेतना, किसी प्रकार का संघर्ष या विद्रोह नहीं दिखाई देता। वे सभी यथास्थितिवादी प्रतीत होती हैं। भीष्म साहनी ने अपने उपन्यास 'कुंतो' में इस स्थिति का चित्रण किया है। साहनीजी ने स्त्री की आत्मसजगता और आत्मनिर्भरता को भी रेखांकित किया है।

---

59. *हिन्दी उपन्यास का इतिहास,* पृ. सं. 305

60. *हिन्दी उपन्यास का इतिहास,* पृ. सं. 321

सवर्ण पुरुष कई स्त्रियों के साथ शारीरिक संबंध बना सकता है, पर औरतें नहीं। आवारा और शराबी दिलसुख की पत्नी अपने बच्चे के साथ पीहर में दिन बिताती दिखाई गई है न कि दूसरी शादी करते हुए।(61) भारतीय धर्म–ग्रंथों में पुरुषों को हर प्रकार की स्वतंत्रता मिली हुई है तथा औरतों के लिए तरह–तरह के नियम बनाये गए हैं। यौनशुचिता, पतिव्रत–धर्म के द्वारा उसकी कोख पर पुरुष वर्ग अपना कब्जा करना चाहता है। इस उपन्यास में दलित स्त्रियों को दैहिक स्वतंत्रता तो है पर सवर्ण स्त्रियों को नहीं। सवर्ण स्त्रियों की अपने परिवार में स्थिति का चित्रण प्रेमचन्द ने 'ठाकुर का कुआँ' कहानी में की है।

भारतीय समाज में विधवा की स्थिति सबसे दुखद होती है। अनेक कारणों से उसे पराये मर्दों के साथ अनैतिक संबंध कायम करने के लिए विवश होना पड़ता है। कई बार आर्थिक कारणों से तो कई बार यौनेच्छाओं की तृप्ति के लिए क्योंकि समाज में चोरी छिपे अनैतिक संबंधों को तो कायम रखा जा सकता है पर समाज–निर्मित नियमों का सार्वजनिक रूप से उल्लंघन कर समाज में जीवित रहना संभव नहीं। 'पटवारी और लीलो के अवैध संबंधों को बहुत ही बारीकी से प्रस्तुत किया गया है।' (62) साथ ही सरकारी कर्मचारियों की स्वेच्छाचारिता, आरामपसन्द जीवन तथा घूसखोरी का भी पर्दाफाश हुआ है।

मजदूर स्त्रियों को अपने मालिकों का न केवल दुर्व्यवहार झेलना पड़ता है अपितु उनका वहाँ यौन–शोषण भी होता है। गरीब, दलित व अधीनस्थ

---

61. *धरती धन न अपना,* पृ. सं. 133

62 *वही,* पृ. सं. 88

स्त्री की मजबूरियों का फायदा उठाना पुरुष वर्ग बखूबी जानता है। स्त्री किसी प्रलोभन में नहीं आती तो उसका बलात्कार किया जाता है। साहित्य में पहली बार इस सच्चाई को नागार्जुन ने 'बलचनमा' उपन्यास में अभिव्यक्त किया है। रांगेय राघव के उपन्यास 'कब तक पुकारूँ' में करनट जाति की स्त्रियों का पुलिसकर्मियों द्वारा किए जाने वाले यौन–शोषण का यथार्थ और मार्मिक चित्रण हुआ है। 'धरती धन न अपना' में चौधरी हरदेव लच्छो का बलात्कार करता है वह ज्ञानो को भी अपनी हवस का शिकार बनाना चाहता है परन्तु उसके विद्रोही स्वभाव से डर जाता है। कई बार विद्रोही स्त्री की चेतना को कुंठित करने के लिए भी पुरुष उससे बलात्कार करता है।

आर्थिक रूप से चौधरियों पर निर्भर होने के कारण ही दलित स्त्रियाँ यौन– शोषण झेलने के लिए विवश हैं। उनके पास जीविकोपार्जन का कोई अन्य उपाय नहीं है। यदि उनके पास रोजगार की वैकल्पिक व्यवस्था होती तो शायद वे हवेलियों में काम करने नहीं जातीं। सबसे बड़ा कारण उनमें अपनी अस्मिता का ज्ञान न होना है। जिस प्रकार दिहाड़ी के लिए बहिष्कार के द्वारा चौधरियों को आधे दिन की दिहाड़ी देने पर मजबूर किया गया उसी प्रकार अपनी इज्जत से खेलने पर वे उनका बहिष्कार कर सकती थीं।

'चमादड़ी' का सांस्कृतिक ढ़ाँचा भी दमनात्मक है। उसमें भी आम भारतीय समाज की सारी विसंगतियाँ व विशेषताएँ मौजूद हैं। भारतीय समाज में शादी–विवाह का निर्णय पुरुष ही लेते हैं। ज्ञानो के पिता की मृत्यु हो गई है। भाई मंगू को चौधरियों के तलवे सहलाने तथा 'चमादड़ी' के लोगों पर धौंस जमाने से ही फुर्सत नहीं मिलती। यही कारण है कि ज्ञानो की शादी अभी तक पाई है। जस्सो कहती भी है कि 'शादी ब्याह की बातें तो मर्द ही करते हैं।'[63]

नहीं हो 'चमादड़ी' में भी दहेज लेने–देने की प्रथा है, जहाँ दो वक्त की रोटी भी बड़ी मुश्किल से मिलती है।

काली और ज्ञानो दलित वर्ग की आगे बढ़ती हुई संघर्षशील चेतना का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनका स्वभाव एक–दूसरे के अनुरूप है। उनमें प्रेम होना स्वाभाविक है। इसकी भनक मिलते ही दोनों पर ध्यान रखा जाने लगता है। ज्ञानो पर पहरे लग जाते हैं और जल्द–से–जल्द उसकी शादी करवा देने के लिए सभी तैयार हो जाते हैं पर ज्ञानो गर्भ धारण कर लेती है। इसकी खबर मिलते ही उसके परिवार वाले उसे चुपचाप जहर दे देते हैं। ज्ञानो की मृत्यु क्यों और कैसे हुई है, सबको पता है पर कोई विरोध नहीं करता। कुँआरा मातृत्व स्वीकार करने का साहस ज्ञानो के परिवार वालों में नहीं है। ज्ञानो की माँ जस्सो को समाज का तो भय होता ही है, साथ ही उसे अपने बेटे के भविष्य (शादी) की चिन्ता होती है। बेटी की जिन्दगी से अधिक प्यार अपनी सामाजिक मर्यादा और पुत्र से है। वह काली से ज्ञानो की शादी समाज के भय से नहीं करवाती है। उसे पुत्री को जहर देना आसान लगता है, काली के साथ गाँव से भगा देना नहीं। यहाँ किस तरह संतान–प्रेम पर परंपरागत संस्कार व समाज–निर्मित नैतिकता हावी हो जाते हैं! पितृसत्ता की इससे बड़ी सफलता और क्या होगी कि एक औरत ही औरत की जान ले, वह भी सामाजिक भय से।

ऐसा सिर्फ ज्ञानो के साथ ही नहीं हुआ है, इसकी परम्परा रही है। जगदीशचन्द्र ने इसका संकेत दिया है –– "गाँव में हर प्रेम की मारी मुटियार का गर्भवती होने के बाद यही हाल होता था और ऐसी मुटियार की माँ की चीखें

---

63. *धरती धन न अपना,* पृ. सं. 270

बहुत ही करुणाभरी होती थी क्योंकि उनमें बेटी के पाप के साथ–साथ उसके अपने पाप का पछतावा भी शामिल होता था।" (64)

काली का पलायन भी यही दर्शाता है कि प्रेम में स्त्री पुरुष दोनों शामिल होते हैं पर सारी त्रासदी औरत को ही झेलनी पड़ती है। ज्ञानो के गर्भवती होने की बात जानकर उसकी माँ के मन में उठने वाले द्वन्द्व की लेखक ने सफल अभिव्यक्ति की है पर ज्ञानो की अर्न्तद्वन्द्व को, उसकी मानसिक ऊहापोह, बेचैनी आदि को अभिव्यक्त करने में लेखक को सफलता नहीं मिली है। ज्ञानो काली के साथ घर से भाग जाने के लिए तैयार है। वह धर्म–परिवर्त्तन के लिए भी तैयार हो जाती है पर औरत को स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार कोई भी धर्म नहीं देता। माँ के द्वारा दिए कड़वे–कसैले काढ़े को ज्ञानो चाव से पी लेती है ताकि गर्भपात हो जाय। उपन्यास के अन्त में ज्ञानो के इस बदले हुए स्वरूप से यही व्यंजित होता है कि कहीं–न–कहीं वह भी आगे आने वाली परिस्थितियों से भयाक्रान्त है। वह गर्भ से छुटकारा पाना चाहती है। यदि वह गर्भपात का विरोध करती तो उसके चरित्र में विशिष्टता आती और वह मृत्यु से भी बच जाती। दवाओं की आड़ में ही जस्सो उसे जहर दे देती है।

प्रेम जीवन का शाश्वत सत्य है। भारतीय समाज में प्रेम को अनैतिक मानने की प्रवृत्ति है जो यहाँ भी विद्यमान हैं। प्रेम में पड़ा व्यक्ति जाति–धर्म, ऊँच–नीच, रिश्ते–नाते का ध्यान नहीं रखता। इसके प्रति विद्रोह करता है। वह समाज से संघर्ष करता है। ज्ञानो काली को समर्पण तो करती है पर वह समाज में व्याप्त नैतिक धारणाओं से भयभीत है। घर आकर वह खूब रोती है। प्रेम और समर्पण के लिए वह समाज में लज्जित क्यों है ? क्या सिर्फ

---

64. *धरती धन न अपना,* पृ. सं. 283

इसलिए कि काली के साथ उसने सात फेरे नहीं लिए हैं ? अनामिका के शब्द में — "जहाँ प्रेम होता है, वहाँ समर्पण जैसे बड़े भाव के एक प्रतीक के रूप में दैहिक संस्पर्श एक महत्वपूर्ण घटना के रूप में जीवन की आहलाद्कारी लय बन जाता है।" (65)

आमतौर पर स्वतंत्रता से मतलब उच्छृंखलता से लगाया जाता है। वरण की स्वंत्रता मनुष्य का अधिकार है। अज्ञेय के उपन्यास 'अपने अपने अजनबी' की योके मृत्यु के लिए वरण का अधिकार चाहती है। वह कहती है — "कह दो सारी दुनिया से कह दो, अन्त में मैं हारी नहीं — अन्त में मैंने जो चाहा सो किया – मर्जी से किया। चुनकर किया।" (66)

जब मृत्यु के लिए मनुष्य वरण का अधिकार चाहता है तो प्रेम और समर्पण के लिए क्यों नहीं चाह सकता? ज्ञानो का चरित्र भोगवादी नहीं है। वह काली को समर्पण करती है तो प्रेम के कारण न कि यौन–तृप्ति के लिए। काली के रूप में उसने मनोवांछित साथी पा लिया है। उसमें उन्मुक्त यौनाचार नहीं है। बाद में भी काली के प्रयासों को ठुकरा देती है। यौन–तृप्ति ही उसका लक्ष्य होता तो वह हरदेव की बेइज्जती नहीं करती। चौधरियों के लड़के उसके सौंन्दर्य के प्रशंसक हैं पर वह किसी की ओर आकृष्ट नहीं होती।

'साहित्य और समाज की सबसे बदनाम, बहिष्कृत और गुमराह औरतें वे ही हैं जो अपने शरीर और मन को अपने पतियों, स्वामियों या अभिभावकों तक ही सीमित नहीं रख पाईं। यानी शरीर की माँग ने जिनके भीतर एक स्वतंत्र इच्छाशक्ति जगा दी वे पुंश्चली, कुलटा, छिनाल, रंडी, पतिता इत्यादि

---

65. अनामिका – *पानी जो पत्थर पीता है,* प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली 2, संस्करण 2012, पृ. सं.

66. अज्ञेय– *अपने अपने अजनबी,* प्रगति प्रकाशन, मेरठ, उ. प्र. 1991, पृ. सं. 116

नामों से सजा की अधिकारिणी हुई। इस 'स्वतंत्रता' की सजा मौत ही थी।' (67) ज्ञानो को इसकी सजा तो मिलनी ही थी।

जगदीश चन्द्र के एक अन्य उपन्यास 'कभी न छोड़ें खेत' की विधवा जसवन्तकौर का नम्बरदारों के यहाँ बैठ जाना उसके पूर्व ससुराल वाले नीलेवालिए को नागवार गुजरता है। इस अपराध के लिए वे जसवन्तकौर को कभी माफ नहीं कर पाते। जगदीश चन्द्र की कहानी 'गूंगी' में नूरी का पिता अपनी जवान बेटी की शादी इसलिए नहीं करवाता क्योंकि माँ की मृत्यु के बाद घर का दायित्व वही संभाल रही है पर वह हमेशा भयाक्रांत रहता है कि नूरी किसी से प्रेम न कर बैठे। इस डर से नूरी पर अपना दबाव बनाए रखने के लिए वह उसे पीटता रहता है। उसकी यातनाओं से नूरी अर्द्धविक्षिप्त–सी हो जाती है। शानी के 'काला जल' की रशीदा का चाचा अपनी यौन–तृप्ति के लिए उसकी शादी नहीं करता। इस तरह समाज में व्याप्त नारी–शोषण के विविध रूप परिलक्षित होते हैं।

यौन–शोषण या बलात्कार की प्रक्रिया में गर्भ धारण होने पर पुरुषों को प्रायः कोई सजा नहीं मिलती। मिलती भी है तो मामूली–सी। औरत को ही तरह–तरह से प्रताड़ित किया जाता है, चाहे वह किसी भी वर्ग या समुदाय की हो, चाहे कुँवारी हो या विधवा। 'काला जल' की अनाथ मालती अपने पिता समान रज्जू मियाँ का तथा 'रतिनाथ की चाची' की विधवा गौरी विधुर देवर जयनाथ का यौन–शोषण झेलते हुए गर्भ धारण करती हैं। बी. दारोगिन (रज्जू मियाँ की पत्नी) मालती को गालियाँ देती हुई मारती–पीटती है और घर से भगा देती है। गौरी को भी समाज की प्रताड़ना झेलनी पड़ती है।

---

67. यादव, राजेन्द्र – *आदमी की निगाह में औरत,* राजकमल पेपरबैक्स, न. दि. 2,दूसरा संस्करण पृ. सं. 16

उसका बेटा उमानाथ भी उसे पीटता है।

संतानोत्पत्ति में स्त्री–पुरुष का बराबर योगदान होता है पर संतान न होने का सारा दोष औरत के मत्थे मढ़ा जाता है। इस उपन्यास से भी पता चलता है कि बाँझ औरतों को हमारे समाज में तरह–तरह से प्रताड़ित किया जाता है। उन्हें घरेलू हिंसा का शिकार होना पड़ता है। किसी की रोने की आवाज सुनकर बाबे फत्तू के यह पूछने पर कि कौन रो रही है, ताया बसन्ता कहता है—"यह खुशिये की घरवाली पुन्नो होगी या फिर मंगू की बहन ज्ञानो। ऐसी चीखें तो बाँझ औरत की होती है या प्रेम की मारी मुटियार की।' बँजर जमीन, बाँझ औरत और प्रेम की मारी मुटियार को कोई पसन्द नहीं करता।" (68)

पुन्नो तथा ज्ञानो के माध्यम से जगदीश चन्द्र ने स्त्रियों पर होने वाले घरेलू हिंसा को तथा लच्छो, प्रीतो आदि के माध्यम से यौन हिंसा को दर्शाया है। ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने जिस प्रकार वर्णाश्रम व्यवस्था के द्वारा अपना अधिपत्य कायम रखा, उसी प्रकार पितृसत्ता ने सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक आधार पर प्रतिबन्ध लगाकर अपनी सत्ता कायम रखी।

शिक्षा से चेतना आती है। यही कारण है कि दलितों और स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखा जाता रहा। 'चमादड़ी' के स्त्री–पुरुष अशिक्षित हैं सिर्फ काली ही चार जमातें पढ़ा है। वे सभी गन्दगीयुक्त माहौल में रहते हैं। उन्हें सामाजिक स्तर पर भेदभाव झेलना पड़ता है परन्तु वे भी अपने स्त्रियों को दोयम दर्जे का ही समझते हैं। स्त्रियों से कोई सलाह–मशविरा नहीं करते। आर्थिक रूप से चमादड़ी की औरतें अपने मर्दों पर तथा मर्द जमींदार पर आश्रित हैं। धार्मिक

---

68. *धरती धन न अपना,* पृ. सं. 267

रूप से भी उन्हें कोई समानता व स्वतंत्रता नहीं मिली है। पीने का पानी भरने के लिए चमादड़ी की औरतें जैसे ही मन्दिर के कुएँ पर जाने की कोशिश करती है पंडित सन्तराम उन्हें गालियाँ देता हुआ मारने दौड़ता है। स्वतंत्र रूप से वे कोई भी धर्म–ग्रहण नहीं कर सकती। दैहिक रूप से ये कुछ हद तक स्वतंत्र हैं। चौधरी मानवता के लिहाज से भी उन्हें कोई अधिकार नहीं देते। 'बहिष्कार' के समय दैनिक क्रियाकर्म के लिए चौधरियों के खेतों में जाती हैं तो वे उन्हें गालियाँ देकर भगा देते हैं।

'धरती धन न अपना' में नारी पात्रों का जीवन–चरित्र विविधतापूर्ण है। लच्छो, प्रीतो, पुन्नो, रक्खिए आदि समाज की शोषित स्त्रियाँ हैं। पुरुषों की दूषित मनोवृत्ति, यौन हिंसा और घरेलू हिंसा को, भूपतियों के अत्याचारों को सहने के लिए विवश हैं। दूसरी ओर समाज निर्धारित नियमों की परवाह न कर अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुनने वाली ज्ञानो जैसी स्वतंत्र स्त्री पात्र भी हैं।

ज्ञानो स्वाभिमानी, निडर, बेबाक, मुँहफट होने के साथ ही कोमल स्वभाव की और दूसरों की मदद करने वाली लड़की है। काली से इसके प्रेम–प्रसंग को लेकर गाँव के लड़के उस पर व्यंग्य करते हैं पर वह किसी की परवाह नहीं करती। दृढ़ता में वह काली से भी आगे है। ज्ञानो में हमें स्त्री चेतना का अंकुर दिखाई देता है। वह अपने मान–सम्मान के प्रति सजग है। छेड़खानी करने पर हरदेव की बेइज्जती कर देती है। बहिष्कार के समय जब पालो उसकी चोटी पकड़ कर उसके पीछे लाठी लेकर मारने दौड़ता है तो वह चुपचाप सहन नहीं करती। ज्ञानो भी उसे टोकरे से मारती है। हरनामसिंह जब जीतू को निर्दयतापूर्वक पीटता है तो ज्ञानो उसे दबे स्वर में गालियाँ देती है। 'चमादड़ी' के मर्दों की निर्लज्जता पर उसे शर्म आती है कि बिना किसी गलती के ये मार क्यों

खा लेते हैं। विरोध क्यों नहीं करते। वह बेबे हुकमा से कहती है कि मुझसे नाजायज बात देखी नहीं जाती।

ज्ञानो अपनी अस्मिता के लिए समाज ही नहीं परिवार से भी विद्रोह करती है। अपमान करने या वस्तु मानकर उसके शरीर का उपभोग करने का अधिकार वह काली को भी नहीं देती। काली भी निडर, बेबाक, साहसी एवं परदुखकातर है। अन्याय उसके विद्रोही मन को स्वीकार नहीं होता। वह ज्ञानो के अलावा अन्य किसी दूसरी लड़की की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता। ज्ञानो उसकी स्मृति में सदैव रहती है। 'नरक कुण्ड में वास' और 'जमीन अपनी तो थी' में भी ज्ञानो के प्रति उसका प्यार व स्नेह परिलक्षित होता है। काली और लालू पहलवान के माध्यम से लेखक ने दिखाया है कि मर्द हमेशा शोषक ही नहीं होते। 'जमीन अपनी तो थी' में नंदसिंह और ठाकरी तथा काली और पाशो के संबंधों के द्वारा पति–पत्नी के प्रेम और साहचर्य को अभिव्यक्ति मिली है। ठाकरी और पाशो को उनके परिवार में सम्मानपूर्ण स्थान मिला है। उनके पति उन पर धौंस नहीं जमाते बल्कि अपने जीवन के सुख–दुःख की वास्तविक संगिनी बनाते हैं।

जगदीश चन्द्र ने 'धरती धन न अपना' के माध्यम से यह स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया है कि भारत में चल रहे नारीवादी आन्दोलन से यहाँ की आम औरतें कितनी प्रभावित थी। नारीवादी आन्दोलन की कोई भी चेतना इस गाँव में दिखाई नहीं देती। आन्दोलन के मुख्य मुद्दे शिक्षा, रोजगार, समानता आदि के अधिकार से यहाँ की औरतें ही नहीं पुरुष भी वंचित हैं। इस उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार ने यह दिखाने की कोशिश की है कि हमारे यहाँ नारीवादी आन्दोलन कुछ वर्गों और विषयों तक ही सीमित रह गया। नारीवादी आन्दोलन के संबंध में आम जनता कुछ भी नहीं जानती। यह सही है

कि प्रमुख आन्दोलनों में ग्रामीण महिलाओं ने भाग लिया परन्तु स्त्री अस्मिता के लिए यहाँ औरतें पश्चिम की तरह सड़कों पर नहीं उतरीं बल्कि अपने साथ होने वाले यौन–शोषण व उत्पीड़न को छुपाने की भरसक कोशिश ही की।

इस तरह हम देखते हैं कि 'धरती धन न अपना'में नारीवादी आन्दोलन की चेतना का अभाव है। पूर्ववर्ती उपन्यासकार जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, उग्र, हजारी प्रसाद द्विवेदी, नागार्जुन तथा समकालीन कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, ममता कालिया, महरून्निसा परवेज, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा के यहाँ स्त्री पात्र परंपरागत मूल्यों को चुनौती देती हैं। वे अपने अस्तित्व व अधिकार के रक्षार्थ संघर्ष करती हैं। ऐसी स्त्री पात्रों का 'धरती धन न अपना' में अभाव है। स्त्री–प्रश्न की दृष्टि से यह एक कमजोर उपन्यास माना जा सकता है। ज्ञानो में थोड़ी–बहुत स्त्री चेतना दिखाई देती है। इस उपन्यास में दलित व स्त्री चेतना के अंकुर अवश्य मिलते हैं। आज का अंकुर ही शाखाओं से युक्त पेड़ बनता है, इस रूप में 'धरती धन न अपना' उपन्यास को देखना ही इसका वास्तविक मूल्यांकन होगा।

उपसंहार

उपसंहार

'धरती धन न अपना' जगदीश चन्द्र की सर्वोत्कृष्ट रचना है। इस उपन्यास में पंजाब के होशियारपुर जिले के घोड़ेवाहा गाँव को केन्द्र में रखा गया है। धर्म और समाज के द्वारा निर्धारित नियमों के नरक में जीने के लिए दलित अभिशप्त हैं। इन सबका असर दलित स्त्रियों के जीवन पर भी पड़ता है।

पितृसत्ता के द्वारा स्त्रियों का शोषण अनेक तरह से होता है। सवर्ण और दलित स्त्रियों की कुछ समस्याएँ तो एक जैसी होती हैं कुछ भिन्न। सवर्ण समाज आर्थिक रूप से प्रायः सुदृढ़ रहता है अतः उनकी स्त्रियों का शोषण पितृसत्ता के द्वारा होती है। दलित स्त्रियों को जीविकोपार्जन के लिए मजदूरी करने घर से बाहर जाना पड़ता है। वहाँ मालिको के द्वारा उनका शोषण होता है।

'धरती धन न अपना' में वर्णित 'चमादड़ी' की स्त्रियों को जाट–चौधरियों के यहाँ काम करने जाना पड़ता है। वहाँ उनका यौन–शोषण होता है। इस तरह दलित स्त्रियों का दुहरा–तिहरा शोषण होता है। सवर्ण स्त्रियाँ भी शोषण मुक्त नहीं हैं। वे अपने परिवार में एक वस्तु की तरह हैं। उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। पति के पहचान से ही उनकी पहचान है। ससुराल में उनका नाम भी नहीं लिया जाता। मर्दों के साथ उनके रिश्तों के अनुसार ही उनकी पहचान निर्मित होती है। सवर्ण परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी होने पर भी उनकी स्त्रियाँ आर्थिक रूप से पुरुषों पर ही आश्रित होती हैं। परिवार में महत्वपूर्ण निर्णय लेने का अधिकार पुरुषों को ही होता है। दलित स्त्रियाँ उनकी तुलना में आर्थिक रूप से स्वतंत्र होती हैं। सवर्ण स्त्रियों पर यौन–शुचिता का प्रतिबंध दलित स्त्रियों की अपेक्षा अधिक होता है। सवर्ण स्त्रियाँ भी दलित स्त्रियों का शोषण करने से पीछे नहीं हटतीं।

जब स्त्रियों ने पितृसत्ता में होने वाले शोषण को समझा उनमें असंतोष का भाव जगा। उन्होंने अपनी स्थितियों के प्रति विद्रोह किया और अपनी मुक्ति की आकांक्षा व्यक्त की, अपने अधिकारों की मांग की। इस तरह नारीवादी आन्दोलन का जन्म हुआ। नारीवादी आन्दोलन को विभिन्न लहरों में बाँटा गया है। पश्चिम में नारीवादी आन्दोलन की शुरूआत मताधिकार की मांग से हुई। बाद में समान शिक्षा, रोजगार तथा वेतन के अधिकार, यौनिक–उत्पीड़न, घरेलू हिंसा, गर्भ नियंत्रण एवं गर्भपात, घरेलू कार्यों के लिए वेतन; समलैंगिकता का अधिकार आदि मुद्दे भी जुड़ गए।

भारत में बौद्धकालीन थेरी गाथाओं से मध्यकालीन मीरा, अक्का महादेवी के यहाँ स्त्री मुक्ति की आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति मिली है। मध्यकालीन समय में सामंती रूढ़ियों तथा राजसत्ता के खिलाफ आवाज उठाना मीरा के साहस, दृढ़ता और आत्मविश्वास का परिचायक है। नवजागरणकालीन बुद्धिजीवियों ने भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा सुधारने के अनेक प्रयास किए। तत्कालीन समय में स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह के प्रयास तथा बाल विवाह एवं सती प्रथा का विरोध प्रमुख मुद्दे थे। बाद में घरेलू हिंसा, मंहगाई, शराबबंदी, नक्सलबारी तथा पर्यावरण संबंधी मुद्दे जुड़े। बलात्कार तथा दहेज विरोधी आन्दोलन भी हुए।.

पश्चिम में नारीवादी आन्दोलन के मुख्यतः तीन रूप हैं –– उदारवादी, उग्रवादी और मार्क्सवादी या समाजवादी। पश्चिम में नारीवादी आन्दोलन की ब्लैक स्त्रियों ने अपना अलग आन्दोलन शुरू किया तो भारत में दलित स्त्रियों ने अपने अलग संगठन बनाए। विभिन्न समाज, वर्ग, धर्म की स्त्रियों की समस्याओं में भिन्नता है, जिसके कारण नारीवादी आन्दोलन विभिन्न धाराओं में बँटा। विभिन्न धाराओं में बँटने से नारीवादी आन्दोलन का क्षेत्र विस्तृत हुआ

पर आन्दोलन का प्रभाव भी कम हुआ। फिलिस शलेफली तथा मिज डेक्टर ने नारीवाद का विरोध किया। अब 'उत्तर नारीवाद' शब्द का भी प्रयोग होने लगा है, जो अप्रत्यक्ष रूप से नारीवाद आन्दोलन की समाप्ति की घोषणा करता है।

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों के शोषण के लगभग सभी रूप 'धरती धन न अपना' में वर्णित गाँव और उसकी 'चमादड़ी' में दिखाई देते हैं। उनके साथ घरेलू हिंसा और यौन–हिंसा होती है। 'चमादड़ी' में भी लिंग के आधार पर कार्य बँटे हुए हैं। पानी भरने का कार्य स्त्रियाँ करती हैं इसलिए 'चमादड़ी' के कुएँ के बाढ़ में डूब जाने पर स्त्रियों को ही चिन्तित दिखाया गया है। पानी भरने की कोशिश में वे जगह–जगह अपमानित होती हैं और अन्त में उनके परिवार वालों को बाढ़ का गंदा पानी ही पीना पड़ता है। इसी तरह चौधरियों के खेतों में दलित पुरुष कार्य करते हैं और घरों में गोबर तथा कूड़ा उठाने का कार्य औरतें करती हैं।

उपन्यास में तथाकथित 'चमादड़ी' में जो समाज उभर कर आया है उसमें दलित स्त्रियों की अपनी चरित्रगत कमियाँ भी उजागर हुई हैं। वे आपस में गाली–गलौज करती रहती है। लड़ाई– झगड़े में वे चौधरियों के साथ एक–दूसरे के अवैध संबंधों को उजागर करती हैं। उपन्यास में इन स्त्रियों के अभावपूर्ण एवं अपमानित जीवन का तो सजीव व मार्मिक चित्रण हुआ है पर उनकी मनोव्यथा को, उनकी प्रतिरोधात्मक चेतना का चित्रण नहीं हुआ है। वे अपने शोषण को ही अपनी नियति मानकर बैठी हुई हैं। अपने बच्चों को (चौधरियों से उत्पन्न अवैध संतानों को भी) भर पेट भोजन उपलब्ध कराने की चिन्ता में ही मरती–खपती रहती हैं। चौधरियों को अपनी अवैध संतानों की कोई परवाह या फिर पहचान नहीं है। 'चमादड़ी' की औरतों की मुख्य समस्या भोजन ही है। काली के अलावा सभी स्त्री–पुरुष अशिक्षित हैं इसलिए उनमें चेतना का अभाव है। ज्ञानो अपनी

अस्मिता के प्रति सजग है। वह पितृसत्ता के नियमों को चुनौती देती है। वह शोषण का प्रतिरोध करती है। हरदेव के छेड़ने पर उसकी बेइज्जती कर देती है। लच्छो के साथ हरदेव बलात्कार करता है। वह अपने साथ हुए हादसे के लिए आँसू बहाती है। बलात्कार पीड़ित लच्छो की बेचैनी, ऊहापोह और मानसिक पीड़ा को लेखक नजरअंदाज कर गया है। इसी प्रकार गर्भ धारण करने के बाद कुँआरी लड़की ज्ञानो में होने वाले मानसिक द्वन्द्व, तनाव व बेचैनी को लेखक ने अभिव्यक्त नहीं किया है।

यह उपन्यास दलितों के संघर्षपूर्ण जीवन की सफल प्रस्तुति करता है। इसके दलित पात्र सवर्णों की गालियों और मारपीट का विरोध नहीं करते लेकिन इसमें दलित चेतना का पूर्णतः अभाव नहीं है। उनके द्वारा बेगार के लिए मना करना, दिहाड़ी की मांग करना तथा दिहाड़ी न मिलने पर चौधरियों का बहिष्कार करना –– उनमें उभरते दलित चेतना का द्योतक है। दलित व सवर्ण स्त्रियाँ अपना शोषण चुपचाप झेलती हैं। ज्ञानो को छोड़कर किसी अन्य में विरोध का साहस नहीं है। जगदीश चन्द्र के पूर्ववर्ती तथा समकालीन अनेक उपन्यासों में तेजस्वी, विद्रोही, अपनी अस्मिता की तलाश में लगी हुई तथा पितृसत्ता के दोहरे चरित्र को चुनौती देती हुई स्त्रियों का चित्रण हुआ है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'धरती धन न अपना' 70 के दशक के महत्वपूर्ण उपन्यासों में एक है पर 'स्त्री विमर्श' की दृष्टि से कमजोर उपन्यास है।

ग्रंथानुक्रमणिका

ग्रंथानुक्रमणिका

आधार ग्रंथ

चंद्र, जगदीश : धरती धन न अपना : राजकमल पेपरबैक्स,
1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली–110002
पहला संस्करण :2007
पहली आवृति : 2009

शाही, विनोद : जगदीश चन्द्र रचनावली सम्पूर्ण खण्ड : एक, दो, तीन, चार : आधार प्रकाशन प्रा.लि.
एस.सी.एफ. 267, सेक्टर 16
पंचकूला, हरियाणा
संस्करण – 2011

सहायक ग्रंथ

अग्रवाल, रोहिणी : स्त्री लेखन : स्वप्न और संकल्प : राजकमल प्रकाशन
1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली–110002
पहला संस्करण : 2011

अनामिका : पानी जो पत्थर पीता है : प्रकाशन संस्थान
4268/बी/3
अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली–2
संस्करण : 2012

अज्ञेय : अपने अपने अजनबी : प्रगति प्रकाशन, मेरठ

आर्य, साधना एवं अन्य (सं.)	: नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुद्दे	: हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्व. 10, केवेलरी लाइन दिल्ली – 7 प्रथम संस्करण : 2001 तृतीय पुनमुर्द्रण; अक्टू.2010
इस्सर, देवेन्द्र	: स्त्री मुक्ति के प्रश्न	: संवाद प्रकाशन आई–499, शास्त्रीनगर मेरठ 250004 (उ. प्र.) प्रथम संस्करण, अक्टू. 2009
एक अज्ञात हिन्दू औरत	: सीमंतनी उपदेश, सं. धर्मवीर	: वाणी प्रकाशन 21–ए, दरियागंज नई दिल्ली – 2 पहला मूल संस्करण 1फर. 1882 को लुधियाने से संस्करण – 2004 संस्करण – 2006
कस्तवार, रेखा	: किरदार जिन्दा है	: राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली–110002 पहला संस्करण : 2010
कस्तवार, रेखा	: स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ	: राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.

		नई दिल्ली–110002 वर्ष – 2009 संस्करण : 2 (पहली आवृति) प्रथम प्रकाशन – 2006
कुमार, राधा	: स्त्री संघर्ष का इतिहास	: वाणी प्रकाशन 4695, 21–ए, दरियागंज नई दिल्ली – 2 संस्करण 2002, 2005, 2009 आवृत्ति 2011
खेतान, प्रभा	: उपनिवेश में स्त्री मुक्तिकामना की दस वार्ताएँ	: राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली–110002 पहला संस्करण : 2003 तीसरी आवृत्ति : 2010
गुजराल तरसेम तथा शाही, विनोद (संपा.)	: जगदीश चन्द्र एक एक रचनात्मक यात्रा	: शतलुज प्रकाशन एस.सी.एफ., 267, सेक्टर–16 पंचकूला (हरियाणा) प्रथम पेपरबैक संस्करण : 2007
गुप्ता, रमणिका	: दलित चेतना साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार ?	: समीक्षा प्रकाशन एक्स/3284 ए, स्ट्रीट नं. 4 रघुवरपुरा नं. 2 गाँधीनगर, दिल्ली – 31

संस्करण 2001

गुप्ता, सुनीता : स्त्री–चेतना के प्रस्थान–बिंदु : प्रकाशन संस्थान
4715/21, दयानन्द मार्ग
दरियागंज, न.दि.–2,प्र.सं. 2010

जैन, अरविन्द : औरत अस्तित्व और अस्मिता : राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.
1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली–110002
पहला संस्करण : 2009
पहली आवृत्ति : 2013

जैन, अरविन्द : औरत होने की सजा : राजकमल पेपरबैक्स
1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली–110002
पहला संस्करण : 1996
परिवर्द्धित संस्करण 2006

जैन, निर्मला : कथा–समय में तीन हमसफर : राजकमल पेपरबैक्स
1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली–110002
पहला संस्करण : 2011

तलवार, वीरभारत : रस्साकशी : सारांश प्रकाशन प्रा.लि.
196–सी, पाकेट –4
मयूर विहार, फेज–1,
नई दिल्ली – 91
पहला पेपरबैक
संस्करण:2006

द्विवेदी, हजारी प्रसाद : बाणभट्ट की आत्मकथा : राजकमल पेपरबैक्स
1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली – 2
पहला संस्करण 1984
पाँचवाँ संस्करण 1990
ग्यारहवीं आवृत्ति 2006
बारहवीं आवृत्ति 2008

दूबे, अभय कुमार : आधुनिकता के आइने में : वाणी प्रकाशन
4697/5, 21ए, दरियागंज
नई दिल्ली 2
संस्करण 2002

प्रेमचन्द : गोदान : राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.
1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, न.दि.2
पहला संस्करण 1988
तीसरा संस्करण 1990
आवृत्ति : 2007

प्रसाद, कमला एवं अन्य (सं.) : स्त्रीः मुक्ति का सपना : वाणी प्रकाशन
4697/5, 21ए, दरियागंज
नई दिल्ली 2
प्रथम संस्करण 2004
द्वितीय आवृत्ति संस्करण 2009

पण्डिता रमाबाई : हिन्दू स्त्री का जीवन : संवाद प्रकाशन

	अनुवाद जोशी, शम्भू	आई–499, शास्त्रीनगर मेरठ,– 250004 प्रथम संस्करण : 2006
पाण्डे, मृणाल	: ओ उब्बीरी ...	: राधाकृष्ण पेपरबैक्स राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि. 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली –2 पहला संस्करण –2003 पहली आवृत्ति – 2006
पाण्डे, मृणाल	: परिधि पर स्त्री	: राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, न.दि.2 पहला संस्करण 1996
पाण्डेय, मैनेजर	: संकलित निबंध	: नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया नेहरू भवन, 5 इन्स्टीटयूशनलएरिया फेज –2, वसंतकुँज, न.दिल्ली 70 पहला संस्करण – 2008 चौथी आवृत्ति – 2011
बोउवार, सीमोन द	: स्त्री उपेक्षिता अनुवाद– खेतान, प्रभा	: हिन्द पॉकेट बुक्स जे. 40, जोरबाग लेन नई दिल्ली – 3 पहला संस्करण – 2002 दूसरी आवृत्ति – 2008

मठपाल, सावित्री : जैनेन्द्र के उपन्यासो में नारी : मंगल प्रकाशन
नाहरगढ़ रोड, जयपुर –1
संस्करण – 1991

मधुरेश : हिन्दी उपन्यास का विकास : लोकभारती प्रकाशन प्रा.लि.
दरबारी बिल्डिंग,
महात्मा गाँधी मार्ग,इलाहाबाद
प्रथम संस्क्रण – 1998
द्वितीय संस्करण –2001
तृतीय संस्करण – 2004
चतुर्थ संस्करण – 2008

मिल, जॉन स्टुअर्ट : स्त्रियों की पराधीनता : राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.
अनुवाद – सक्सेना, प्रगति 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग,न.दि.2
पहला संस्करण– 2002
दूसरी आवृत्ति – 2009

यशपाल : दिव्या : लोकभारती प्रकाशन
दरबारी बिल्डिंग, एम.जी रोड
इलाहाबाद – 1
विद्यार्थी संस्क्रण – 2008

यादव, राजेन्द्र : आदमी की निगाह में औरत : राजकमल पेपरबैक्स
1बी, नेताजी सुभाष मार्ग,न.दि.2
पहला संस्करण– 2006
दूसरा परिवर्द्धित संस्क. 2007

यादव, राजेन्द्र एवं वर्मा, अर्चना (सं.)	: औरत : उत्तर कथा	: राजकमल प्रकाशन 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली –2 पहला संस्करण –2002 दूसरी आवृत्ति – 2013
यादव, राजेन्द्र एवं अन्य (सं.)	: पितृसत्ता के नए रूप	: राजकमल प्रकाशन 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली –2 पहला संस्करण –2010
राय, गोपाल	: हिन्दी उपन्यास का इतिहास	: राजकमल प्रकाशन 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली –2 पहला संस्करण –2005 पहली आवृत्ति – 2009
लाल, चमन (सं.)	: जगदीश चन्द्र दलित जीवन के उपन्यासकार	: आधार प्रकाशन एस.सी.एफ. 267, सेक्टर–16 पंचकूला – 134113 (हरियाणा)
वोल्स्टनक्राफ्ट, मेरी	: स्त्री अधिकारों का औचित्य–साधन अनुवाद – मीनाक्षी	: राजकमल प्रकाशन 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली –2 पहला संस्करण –2005

		पहली आवृत्ति – 2009
शर्मा, कुमुद	: आधी दुनिया का सच	: सामयिक प्रकाशन 3320–2, जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, न.दि.–2 संस्करण – 2011
शर्मा, जानकी प्रसाद	: उपन्यास एक अंतर्यात्रा	: यश पब्लिकेशनन्स X/909, चाँद मौहल्ला गाँधी नगर, दिल्ली – 31 संस्करण – 2010
शर्मा, नासिरा	: औरत के लिए औरत	: सामयिक प्रकाशन 3320–2, जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, न.दि.–2 संस्करण – 2011
शर्मा, क्षमा	: स्त्रीवादी और साहित्य	: राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली – 2 पहला संस्करण – 2002 दूसरी आवृत्ति – 2012
साहनी, भीष्म	: तमस	: राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली – 2 पहला संस्करण – 1972

		सातवाँ संस्करण – 1992 सातवीं आवृत्ति – 2007
सिंह, तेज	: अंबेडकरवादी स्त्री चिंतन	: 7/14, गुप्ता लेन अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली – 2 प्रथम संस्करण – 2011
सिंह, नामवर	: प्रेमचन्द और भारतीय समाज त्रिपाठी, आशीष (सं.)	: राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली –2 प्रथम संस्करण –2010 पहली आवृत्ति – 2011 दूसरी आवृत्ति– मार्च,2011
सिंह, नामवर	: सम्मुख त्रिपाठी, आशीष (सं.)	:राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली – 2 प्रथम संस्करण – 2012

पत्रिकाएँ :

आलोचना, अंक 48, जनवरी – मार्च 2013, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली –2

आलोचना, अंक 49, अप्रैल – जून 2013, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली –2

नया ज्ञानोदय, अंक 108 फरवरी 2012, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, पोस्ट बॉक्स नं. – 3113, नई दिल्ली – 3

हंस, वर्ष : 24, अंक 4 नवम्बर 2009 अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., 2/36, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली –2